योगका प्रारंभ

श्रीमाताजी

श्रीमाताजी

योगका प्रारंभ

अदिति कार्यालय
पांडिचेरी-२

अदिति पुस्तक-माला — पुष्प २०　　　　नवंबर १९६९

संकलनकर्त्ता और अनुवादक :
श्यामसुन्दर झुनझुनवाला

संपादक : चन्द्रदीप

प्रथम संस्करण २०००
१९६९

प्रकाशक — अदिति कार्यालय, पांडिचेरी—२
मुद्रक — श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी—२

Hindi — Yoga Ka Prarambha *by* The Mother
Published by Aditi Karyalaya, Pondicherry—2
Printed at Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry—2

Our Path

To walk on the path you must have a dauntless intrepidity, you must never turn back upon yourself with this mean, petty, weak, ugly movement that fear is.

An indomitable courage, a perfect sincerity, a total self-giving to the extent that you do not calculate or bargain, you do not give with the idea of receiving, you do not offer yourself with the intention of being protected, you do not have a faith that needs proofs, – this is indispensable for advancing on the path, – this alone can shelter you against all dangers.

हमारा पथ

इस पथपर चलने के लिये तुम्हारे अंदर होनी चाहिये आतंक-रहित वीरता, भय नामक जो हीन, तुच्छ, दुर्बल और घृण्य वृत्ति है उसके कारण तुम्हें कभी पीठ नहीं दिखानी चाहिये।

तुम्हारे अंदर होना चाहिये दुर्दमनीय साहस, पूर्ण निष्ठा, ऐसा सर्वांगपूर्ण आत्मदान जिसमें तुम हिसाब-किताब नहीं लगाते या मोल-तोल नहीं करते, तुम पानेकी भावनाके साथ नहीं देते, सुरक्षित रखे जानेके उद्देश्यसे तुम अपनेको अर्पित नहीं करते, तुम ऐसी श्रद्धा नहीं रखते जिसे प्रमाणकी आवश्यकता हो — बस, यही चीज इस पथपर अग्रसर होनेके लिये अनिवार्य है — केवल यही समस्त विपत्तियों-से तुम्हारी रक्षा कर सकती है।

— श्रीमां

श्रीअरविंद-योगके प्रति लोगोंका अनुराग दिन-दिन बढ़ता दिखायी दे रहा है और नये-नये जिज्ञासु इसे समझनेका प्रयास करते हुए मिलते हैं। ऐसे ही जिज्ञासुओंकी आवश्यकताको ध्यानमें रखकर श्रीमाताजीकी वाणियोंमेंसे यह पुस्तिका संकलित की गयी है। सच पूछा जाय तो श्रीमाताजीकी पुस्तक — **मातृवाणी, भाग १ : वार्त्तालाप** — में योगकी प्रारंभिक बातें बड़े सरल और सुन्दर ढंगसे समझायी गयी हैं। प्रस्तुत पुस्तिकाको पढ़नेवाले नवीन जिज्ञासुओंको उस पुस्तकको भी अवश्य पढ़ना चाहिये। उस पुस्तकके बहुत-से विषयोंको पीछे श्रीमाताजीने आश्रमके बालकोंके सामने पढ़कर उनका विशदीकरण किया था। उन्हींमेंसे कुछ आवश्यक विषयोंको हमने यहां संकलित किया है तथा वैसे ही कुछ अन्यान्य आवश्यक प्रश्नोंका समाधान करनेवाली श्रीमांकी वाणियां भी दी हैं। इस तरह, हम आशा करते हैं कि, यह पुस्तक हमारे नये-पुराने दोनों तरहके पाठकों और साधकोंके लिये उपयोगी साबित होगी।

— संपादक

भगवान्‌के बिना जीवन दुःखमय भ्रम है,
भगवान्‌के साथ सब कुछ आनंद ही आनंद है।

*

जीवनका लक्ष्य सुख पाना नहीं है।
सामान्य जीवनका लक्ष्य है अपने कर्तव्योंका पालन करना,
आध्यात्मिक जीवनका लक्ष्य है भगवान्‌को प्राप्त करना।

—श्रीमां

विषय-सूची

यदि भगवान्‌ने तुम्हारे लिये किसी कठिनाईकी इच्छा की है तो उसका प्रतिवाद न करो। उसे आशीर्वादके रूपमें ग्रहण करो और निःसंदेह वह आशीर्वाद बन जायगी।

*

"भगवान्‌को देनेके लिये मेरे पास कुछ नहीं है", ऐसा कभी न कहो। देनेको सदैव कुछ-न-कुछ रहता ही है, क्योंकि तुम अपने-आपको सदा ही अधिक अच्छे और अधिक पूरे रूपमें दे सकते हो।

*

भगवत्कृपामें पूर्ण विश्वास और निर्भरता बनाये रखना ही, अंतिम विश्लेषणमें, सर्वोत्तम बुद्धिमानी सिद्ध होता है।

*

विश्वासके साथ हम आगे बढ़ेंगे,
निश्चयताके भावमें हम प्रतीक्षा करेंगे।

*

जबतक अहं रहेगा तबतक प्रेम नहीं किया जा सकता। प्रेम ही प्रेम कर सकता है, प्रेम ही अहंको जीत सकता है।

*

कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ भी नहीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्‌के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

अध्यात्म ही समाधान है

"भगवान् क्योंकर अपनी दुनियापर इतने भयंकर रूपमें हथौड़ा मारते हैं, उसे आटेकी तरह गूंधते और रौंदते हैं, इतनी बार उसे रक्त-रंजित करते और भट्ठीकी नरक-जैसी तपती लाल अग्निमें झोंकते हैं....।"

—श्रीअरविंद (विचार और झांकियां)

अंतिम रूपमें देखा जाय तो सारी समस्या यह जानना है कि आया मानवजाति विशुद्ध स्वर्णकी स्थितिमें पहुंच गयी है या उसे अभी भी भट्ठीमेंसे गुजरनेकी आवश्यकता है।

एक बात स्पष्ट है। वह यह कि मानवजाति अभीतक विशुद्ध स्वर्णकी स्थितिमें नहीं पहुंची है, यह बात दिखलायी पड़ती है और निश्चित है।

किंतु दुनियाके इतिहासमें कोई ऐसी चीज घटित हो गयी है जिससे यह आशा होती है कि मानवजातिका एक चुना हुआ भाग, मानव-प्राणियोंकी शायद एक छोटी-सी संख्या विशुद्ध स्वर्णमें बदल जानेको प्रस्तुत है, और फिर ये ही लोग हैं जो हिंसा किये बिना शक्तिको, संहार किये बिना वीरत्वको और विनाश किये बिना साहस-को अभिव्यक्त कर सकेंगे।

परंतु श्रीअरविंद निश्चित रूपसे यह उत्तर देते हैं: "यदि महज मानवजाति आध्यात्मिक हो जाना स्वीकार कर ले।" यहां "मानव-जाति" कहनेके बदले हम कहेंगे "व्यक्ति"; केवल तभी यदि व्यक्ति आध्यात्मिक बन जाना स्वीकार कर ले, स्वीकार कर ले।

व्यक्तिके अंदर कोई चीज खोज करती है, अभीप्सा करती है; बाकी भाग इंकार करता है, वह जैसा है वैसा ही बना रहना चाहता है; मिलीजुली कच्ची धातुको भट्ठीमें फेंक देनेकी आवश्यकता है।

इस समय हम एक बार फिर पृथ्वीके इतिहासके एक निर्णायक मोड़पर खड़े हैं। बहुतसे लोगोंकी ओरसे यह प्रश्न पूछा जाता है: "क्या होने जा रहा है?" सर्वत्र बेचैनी, प्रतीक्षा और भयका भाव विद्यमान है। क्या होनेवाला है? उत्तर बस एक ही है: "यदि महज मानवजाति आध्यात्मिक हो जाना स्वीकार कर ले।"

और शायद यह पर्याप्त होगा यदि कुछ व्यक्ति विशुद्ध स्वर्ण बन जायं और उनका उदाहरण घटना-प्रवाहको बदल देनेके लिये पर्याप्त हो। हम इसी आवश्यकताके सम्मुख खड़े हैं, अनिवार्य रूपमें।

जिस साहस, जिस वीरताकी मांग भगवान् हमसे करते हैं उसे हम अपनी निजी कठिनाइयों, अपनी निजी अपूर्णताओं, अपनी निजी अंधताओंके विरुद्ध लड़नेमें क्यों न प्रयुक्त करें?

आंतरिक विशुद्धीकरणकी भट्ठीका सामना हम वीरताके साथ क्यों न करें जिसमें कि समूची-की-समूची सभ्यताको अंधकारमें डुबा देनेवाले किसी विपुल, आसुरी विनाशके भीतरसे एक बार फिर गुजरनेकी आवश्यकता ही न रह जाय?

बस, यही समस्या हमारे सामने उपस्थित है। प्रत्येकको इसे अपने-अपने तरीकेसे सुलझाना है।

आजकी शाम मेरे पास जो प्रश्न आये हैं उनका मैं उत्तर दे रही हूं और मेरा उत्तर वही है जो श्रीअरविंदका है: "यदि महज मानवजाति आध्यात्मिक हो जाना स्वीकार कर ले।"

और मैं इतना और जोड़ रही हूं: समय भागा जा रहा है—मानवीय दृष्टिसे।

— श्रीमां

भगवान्‌की सेवा करने की इच्छा रखने वाले लोगोंके लिये

प्रार्थना

समस्त विघ्नोंको जीतनेवाले हे प्रभु, तुम्हारी जय हो!

ऐसा करो कि :

हमारे अंदर कोई भी चीज तुम्हारे कार्यमें बाधक न हो,

कोई भी चीज तुम्हारी अभिव्यक्तिको न रोके,

सब चीजोंमें और प्रतिक्षण तुम्हारी ही इच्छा पूरी हो।

हम यहां तुम्हारे सम्मुख खड़े हैं ताकि तुम्हारी इच्छा हमारे अंदर पूरी हो।

पूरी हो हमारी सत्ताके प्रत्येक तत्त्वमें, प्रत्येक क्रियामें, हमारी सत्ताके ऊंचे-से-ऊंचे शिखरोंसे लेकर देहके छोटे-से-छोटे कोषोंतकके अंदर।

ऐसा करो कि :

हम तुम्हारे प्रति निष्ठावान् बने रहें पूर्णतः और सदैव, अन्य सब प्रभावोंको छोड़कर मात्र तुम्हारे प्रभावमें ही रहें पूर्णतः।

ऐसा करो कि :

हम तुम्हारे प्रति एक गभीर और तीव्र कृतज्ञताका भाव रखना कभी न भूलें,

प्रतिक्षण हमें जो तुम्हारी ओरसे अद्‌भुत चीजोंकी भेंट मिलती है उनमेंसे कोई भी चीज बर्बाद न करें,

हमारे अंदर जो कुछ भी है, वह तुम्हारे कार्यमें सहयोग दे और तुम्हारी सिद्धिके लिये सब कुछ तैयार हो जाय।

समस्त सिद्धिके परम स्वामी, हे प्रभु, तुम्हारी जय हो।

अपनी विजयमें हमें विश्वास प्रदान करो, जीवंत और तीव्र, पूर्ण और अडिग विश्वास।

— श्रीमां

बालकोंकी एक प्रार्थना

हे प्रभु! हम तुमसे प्रार्थना करते हैं:
हम यहां क्यों हैं, यह हम अधिक अच्छी तरह समझ पायें,
हमें यहां जो कुछ करना है वह अधिक अच्छी तरह कर पायें,
हमें यहां जैसा होना चाहिये ठीक वैसा ही बन सकें, ताकि तेरी इच्छा सुसमंजस रूपमें पूरी हो जाय।

योगका प्रारंभ

योगका प्रारंभ

जिज्ञासाका चमत्कार

साधारण चेतना वस्तुओंको ठीक उसी रूपमें सही मान लेती है जैसी कि वे होती हैं। वह प्रश्न नहीं करती; उसे लगता है कि प्रत्येक चीज बहुत स्वाभाविक है और इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकती। वह उन्हीं पुरानी परिचित चीजोंको बार-बार घटित होती देखती है और देखनेकी आशा करती है; उसे उनमें कोई भी अस्वाभाविक स्वर झंकृत होता हुआ नहीं सुनायी पड़ता। यही साधारण चेतनाकी अचेतनताकी अवस्था है।

परंतु जब तुम सचेतन होना आरंभ करते हो तो तुम चारों ओर ताकते हो और चीजोंपर आंख गड़ाकर देखते हो, तुम मानो नींदसे जग उठते हो, और फिर प्रश्न करना, आश्चर्य करना प्रारंभ कर देते हो: यह भला इस तरहका क्यों है, यह बात ऐसी कैसे हो गयी, यह क्या है, इसका भला उद्देश्य क्या है इत्यादि-इत्यादि।

सामान्यतया तुम देखते हो कि सूरज निकलता है, वर्षा होती है, पृथ्वी चक्कर काटती है — परंतु उन वस्तुओं या घटनाओंमेंसे किसी-के विषयमें तुम्हारे अंदर विचारकी एक तरंग भी नहीं उठती; हां, जब कोई चीज तुम्हें उपयोगी प्रतीत होती है या महज एक बला तो

फिर तुम्हारी दृष्टि उस ओर जाती है, अन्यथा नहीं। परंतु जब तुम्हारे अंदर ज्योति आती है और तुम सचेतन होते हो, अपने विषयमें तथा अपने चारों ओरकी चीजोंके विषयमें सचेतन होते हो, तो प्रत्येक चीज एक महत्त्व, एक अर्थ ग्रहण कर लेती है और तुम आश्चर्यसे भर जाते हो, आश्चर्यमय सृष्टिके ऊपर आश्चर्यचकित हो उठते हो। जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ते हो, जैसे-जैसे तुम्हारे अंदर ज्योति बढ़ती है, वैसे-वैसे तुम्हारा आश्चर्य और भी बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे तुम्हारी जानकारी — ज्ञान बढ़ता है वैसे-वैसे तुम्हारा कौतूहल भी बढ़ता जाता है। एक नया सौंदर्य घेर लेता है, वह प्रत्येक वस्तु और घटनासे प्रवाहित होता है। अब तुम वस्तुओंको ठीक रोजमर्रेकी चीज नहीं मानते और उन्हें यों ही यंत्रवत् नहीं निकल जाने देते, बल्कि उनमेंसे प्रत्येकके साथ तुम मेहमानकी तरह मिलते हो और उसके साथ परिचय बढ़ाना और परिचित होना चाहते हो; उनमेंसे प्रत्येकके पास तुम्हारे लिये एक संदेश होता है और स्वयं तुम्हारे पास कुछ कहनेको होता है। यह चीज अनंत आनंद और चिर-वर्द्धमान ज्ञानका स्रोत होती है।

योगका चुनाव

योग करनेके लिये तुम्हें ज्ञानपूर्वक उसकी इच्छा करनी होगी, तुम्हें सबसे पहले यह जानना होगा कि यह क्या है, — जानो कि यह क्या है और तब संकल्प करो। और एक बार जब तुमने संकल्प कर लिया तब फिर तुम मत हिचकिचाओ। जब तुम इसे ग्रहण करते हो तब तुम्हें यह अच्छी तरह जानकर ही इसे लेना चाहिये कि तुम क्या कर रहे हो। जब तुम यह कहते हो कि "मैं योग

करना चाहता हूं", तब तुम्हें जानना चाहिये कि तुम किस बातका निर्णय कर रहे हो। यही कारण है कि जब मैंने तुमसे इसकी चर्चा की थी तब मैंने इस चीजके इस स्वरूपपर बहुत अधिक जोर नहीं दिया था। मैंने निश्चय ही इस चीज (योग) के बारेमें बातचीत की है और संभवतः काफी मात्रामें भी की है....; परंतु मेरा मतलब यह है कि साधारण रूपमें मैंने जो कुछ भी कहा हो, जब कोई व्यक्तिगत रूपसे मेरे पास आता है और कहता है कि मैं योग करना चाहता हूं तभी मैं 'हां' (या, यदि आवश्यक हो तो, 'ना') कहती हूं। ऐसे व्यक्तियोंके लिये बातें अलग हो जाती हैं, जीवनकी अवस्थाएं, विशेषकर आंतरिक चीजें और अवस्थाएं भिन्न प्रकारकी हो जाती हैं।

यहां सर्वदा ही एक चेतना विद्यमान रहती है और वह तुम्हारी स्थितिको सुधारनेके लिये कार्य करती रहती हैं; वह निरंतर तुम्हें उन बाधाओंके सम्मुख उपस्थित करती रहती है जो तुम्हें उन्नति करनेसे रोकती हैं; वह तुम्हारे सिरको तुम्हारी ही भूलों और अंध-ताओंसे टकरा देती है। परंतु यह बात केवल उन्हीं लोगोंके लिये घटित होती है जिन्होंने योग करनेका निश्चय किया है। दूसरोंके लिये वह चेतना प्रगति करानेवाली एक ज्योति, एक ज्ञान, एक शक्तिके रूपमें काम करती है जिसमें कि तुम अपनी अधिक-से-अधिक क्षमताओंको आयत्त कर सको, तुम अधिक-से-अधिक अनुकूल वाता-वरणमें, जहांतक संभव हो वहांतक, अपने-आपको विकसित कर सको, परंतु वह तुमको चुनाव करनेके लिये पूर्णतः स्वतंत्र छोड़ देती है।

तुम्हारा निर्णय तुम्हारे अंतरसे आना चाहिये। जो लोग ज्ञान-पूर्वक योग करनेके लिये आते हैं और यह जानते हैं कि योग क्या है, उन सभी लोगोंको जीवनकी कुछ ऐसी अवस्थाओंको स्वीकार करना पड़ता है जो अन्य लोगोंके जीवनकी अवस्थाओंसे एकदम भिन्न होती हैं — बाहरमें संभवतः दोनोंके बीच कोई विशेष भेद न भी हो पर

भीतर एक चौड़ी खाई होती है। उस शक्तिमें एक प्रकारकी स्वेच्छाचारिताका भाव है जो योगपथसे तनिक भी हटने नहीं देता: भूलोंको करते ही वे तुरत ऐसे परिणामोंके साथ दिखायी देने लगती हैं कि फिर कोई अपनेको धोखा नहीं दे सकता और सारी बातें ही बड़ा गंभीर रूप धारण कर लेती हैं।

....(उस समय) बस, तुम्हारे सामने होता है वह प्रकाश और अनुसरण करनेके लिये, सीधे चले जानेके लिये मौजूद होता है एक रास्ता, तुम्हें जरा भी इधर-उधर नहीं मुड़ना है। यह पथ किसीको धोखा नहीं देता और न कोई इसे धोखा दे सकता है। तुम्हें जान रखना चाहिये कि योग महज खिलवाड़ नहीं है। जब तुम इसे चुनते हो तो तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुम क्या कर रहे हो। जब तुमने अपना रास्ता चुन लिया तब तुम्हें उसपर डटे रहना होगा। अब तुम्हें हिचकिचानेका कोई अधिकार नहीं। अब तुम्हें आगे ही बढ़ना होगा। बस, बात इतनी ही है।

मनुष्य योग, रूपांतरका योग — जो सभी कामोंमें अत्यंत कठिन काम है — केवल तभी कर सकता है जब कि वह अनुभव करे कि वह यहां, इस पृथ्वीपर, केवल इसीके लिये है और उसे अन्य कोई काम नहीं करना है, यही उसके अस्तित्वका एकमात्र कारण है। यदि तुम्हें कठिन परिश्रम करना पड़े, दुःख झेलना पड़े, संघर्ष करना पड़े तो भी कोई परवा नहीं: तुम यदि कहो, "बस यही और अन्य कुछ भी नहीं",—तब बात दूसरी है। अन्यथा मैं तुमसे कहती हूं: बराबर प्रसन्न रहो, सर्वदा अच्छे बन रहो; 'अच्छे बने रहो' का मतलब है, अधिकाधिक समझदार बनो, ...साधारण जीवनसे एक अधिक ऊंचा, अधिक महान् और अधिक सच्चा जीवन यापन करने-का प्रयास करो तथा इस चेतना, इस ज्योति तथा इस सदाशयताके कुछ अंशको जगत्में प्रकट होने दो।

योग किसलिये ?

"तुम किसलिये योग करना चाहते हो? शक्ति पानेके लिये? शांति और स्थिरता प्राप्त करनेके लिये? मानवजातिकी सेवा करनेके लिये? इनमेंसे कोई भी उद्देश्य यह सूचित करनेके लिये पर्याप्त नहीं है कि योग-पथपर आना तुम्हारे लिये दैवनिर्दिष्ट है।"

(मातृवाणी — वार्त्तालाप)

सबसे बुरी बात यह है कि तुम शब्दोंमें विचार करते हो, पर ये शब्द अर्थसे खाली होते हैं। अधिकांश समय ये महज शब्द ही होते हैं — तुम भगवान्‌की बात करते हो, परात्पर ब्रह्मकी बात करते हो, योगकी बात करते हो, तुम बहुत-सी बातें कहते हो, पर क्या उन सब बातोंका तुम्हारे मस्तकमें विद्यमान किसी ठोस वस्तुसे कोई सरोकार होता है? किसी विचार, किसी बोध, किसी स्पष्ट भावना, किसी अनुभवके साथ कोई मेल होता है? अथवा वे खाली शब्द ही होते हैं?

कहा जाता है कि योग ही "जीवनका अंतिम लक्ष्य है", परंतु तुम भला इस "अंतिम लक्ष्य" से क्या आशा करते हो? कुछ लोग कहते हैं, इसका मतलब है "अपने-आपको जानना"; यह इसका व्यक्तिगत और निजी पक्ष है। यदि इसे थोड़ा और आगे बढ़ाया जाता है तो इसका मतलब होता है अपनी सत्ताके सत्यके विषयमें सचेतन होना: तुम क्यों पैदा हुए हो और तुम्हें क्या करना है? यदि इसे और आगे बढ़ाया जाय तो तुम अन्य मनुष्योंके साथके अपने संबंधोंके विषयमें सचेतन हो सकते हो; और थोड़ा और आगे चलकर तुम यह पूछ सकते हो कि संसारमें मनुष्यजातिका मुख्य कार्य, लक्ष्य क्या है। और उससे भी आगे चलकर यह पूछ सकते हो कि मनो-

वैज्ञानिक दृष्टिसे पृथ्वीकी स्थिति क्या है। विश्व क्या है, इसका लक्ष्य क्या है, इसका मुख्य कार्य क्या है? इसी तरह एक-एक पग तुम बढ़ते हो और अंतमें समस्याको उसके पूरे रूपमें देखते हो। तुम्हें शब्दोंके पीछे विद्यमान वस्तुको, अनुभूतिको देखना चाहिये। यहां हम योगकी चर्चा कर रहे हैं, पर दूसरी जगह हम दूसरे ढंगसे कह सकते हैं; कुछ लोग कहेंगे, "मैं अपने अस्तित्वका कारण ढूंढ़ रहा हूं" आदि-आदि। धार्मिक भावना रखनेवाले लोग कहेंगे, "मैं भागवत उपस्थितिका पता लगाना चाहता हूं"। इस चीजको प्रकट करनेके पचासों तरीके हैं, पर "यह चीज" ही है जो सबसे प्रधान है; तुम्हें अपने सिरमें, अपने हृदयमें, सर्वत्र इसे अनुभव करना चाहिये। यह चीज खूब ठोस, सजीव होनी चाहिये अन्यथा तुम आगे नहीं बढ़ सकते। तुम्हें शब्दोंसे बाहर निकल आना होगा और कर्ममें प्रवृत्त होना होगा — अनुभूतिमें प्रवेश करना होगा, जीवनमें पैठना होगा।

(एक विद्यार्थीसे) क्या तुम योग करना चाहते हो?

हां, माताजी!

तुम क्यों योग करना चाहते हो?

भगवान्‌की उपस्थितिका अनुभव करनेके लिये।

और तुम?

भगवान्‌को पानेके लिये, और उसके लिये हमें स्वयं पूर्ण बनना होगा।

और तुम? योगमें तुम्हारी क्यों रुचि है?

क्योंकि मैं अपने-आपको जाननेमें समर्थ होता हूं।

और तुम?

उसे करनेके लिये जिसे हम आंतरिक सत्यके रूपमें अनुभव करते हैं।

और तुम? क्या तुम योग करते हो?

कभी-कभी।

तुम सच्चे हो, पर कभी-कभी क्यों ? . . . (दूसरे विद्यार्थीसे) क्या तुम्हें कोई धारणा है कि योग क्या है ?

मेरी समझमें यह एक पथ है जिससे . . . .।

पथके अंतमें क्या है ?

भगवान्‌की सतत उपस्थिति।

(दूसरे छात्रकी ओर मुड़कर) योगमें तुम्हें सबसे अधिक कौन बात पसंद है ?

मैं नहीं समझता कि योग क्या है। क्या आपपर एकाग्र होकर उसे किया जाता है ?

यह एक अच्छा प्रतीक है।

जो हो, प्रसन्नताकी बात है कि किसीने यह नहीं कहा है कि वह शक्ति पानेके लिये योग करना चाहता है। ऐसे देश और लोग हैं जो अस्पष्टतः यह जानते हैं कि योग नामकी कोई चीज है, और वे इस भावनाके साथ आरंभ करते हैं कि वे दूसरोंसे अधिक ऊंची कोटिके मनुष्य बन जायेंगे, वे दूसरोंकी अपेक्षा बहुत बड़ी शक्ति प्राप्त करेंगे और इसलिये दूसरोंपर अधिकार जमानेमें सक्षम होंगे। यह योग करनेका बहुत बुरा कारण है, अत्यंत स्वार्थपूर्ण है, ऐसा कारण है जो अत्यंत हानिकारक परिणाम उत्पन्न करता है। दूसरे लोग, जो बहुत विक्षुब्ध होते हैं, जिनका जीवन कठिन होता है, जिन्हें दुश्चिताएं, दुःख-शोक, अनेक परेशानियां होती हैं, कहते हैं, "ओह, मैं एक ऐसी चीज पाऊंगा जो मुझे शांति, समता प्रदान करेगी और मैं थोड़ा-सा विश्राम पा सकूंगा।" और वे योगमार्गमें दौड़ पड़ते हैं और समझते हैं कि अब वे एकदम संतुष्ट और सुखी हो जायेंगे। पर, दुर्भाग्यवश, बात पूर्णतः ऐसी नहीं है। जब तुम इस प्रकारके कारणोंसे योग आरंभ करते हो तो तुम्हें निश्चित रूपसे अपने मार्गपर महान् कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।

और फिर मनुष्योंकी दृष्टिमें कुछ बहुत बड़े-बड़े गुण हैं, जैसे,

"लोकोपकार", "मानव-प्रेम" आदि। कितने सारे लोग कहते हैं कि "मैं योग इसलिये करना चाहता हूं कि मनुष्यजातिकी सेवा करनेमें समर्थ हो सकूं: दुःखियोंको सुखी बनाऊं, संसारकी ऐसी व्यवस्था करूं जिससे प्रत्येक व्यक्ति सुखी हो सके।" मैं कहती हूं कि यह पर्याप्त नहीं है। मैं यह नहीं कहती कि यह सब अपने-आपमें बुरा है, यद्यपि एक बार मैंने एक वृद्ध गुह्यवादीको तानेके लहजेमें यह कहते हुए सुना था: "वह अवस्था बहुत जल्दी नहीं आयगी जब कि संसारमें दुःख-दैन्य नहीं रह जायगा क्योंकि ऐसे बहुत अधिक लोग हैं जो इस दुःख-दैन्यके कारण प्रसन्न हैं और उसके सहारे जीते हैं।" यह एक व्यंग्योक्ति है, पर यह एकदम गलत नहीं है। यदि शांत करनको कोई दुःख-दैन्य न हो तो परोपकारी लोगोंके बने रहने-का कोई कारण ही नहीं रह जायगा — वे अपने-आपसे कितना संतुष्ट रहते हैं, वे कितना अधिक यह समझते हैं कि वे स्वार्थी नहीं हैं! मैंने ऐसे लोगोंको देखा है जो इस तरह बहुत दुःखी हो जायेंगे यदि पृथ्वीपर जरा भी दुःख-दैन्य न हो! यदि दूर करनेको कोई दुःख-कष्ट न हो तो वे लोग भला क्या करेंगे, उनका क्या कार्य रह जायगा और फिर उनका गौरव ही क्या होगा? वे लोग दूसरोंको यह कैसे दिखा सकेंगे कि "हम स्वार्थी नहीं हैं!" लोग यह कैसे जानेंगे कि वे लोग बड़े उदार और करुणासे भरे हुए हैं?

* *

"....क्या तुम भगवान्‌के लिये योग करना चाहते हो? .....इस स्थितिमें और केवल इसी स्थितिमें यह कहा जा सकता है कि तुम इस पथके लिये तैयार हो।
"अतः यही है पहला पग: भगवान्‌के लिये अभीप्सा।"

(मातृवाणी — वार्त्तालाप)

अभीप्साकी पहली क्रिया यह है: तुम्हें एक प्रकारका अस्पष्ट

बोध होता है कि विश्वके पीछे कोई चीज विद्यमान है जो जानने योग्य है, जो संभवतः (क्योंकि अभी तुम जानते नहीं) एकमात्र ऐसी चीज है जिसके लिये जीना चाहिये, जो दिव्य सत्यके साथ तुम्हारा संबंध करा सकती है; वह कुछ ऐसी चीज है जिसपर विश्व निर्भर है पर जो विश्वपर निर्भर नहीं है; वह एक ऐसी चीज है जो अभी तुम्हारी समझसे परे है पर जो तुम्हें सभी वस्तुओंके पीछे विद्यमान प्रतीत होती है। उसके विषयमें अधिकांश लोग जो कुछ अनुभव करते हैं उससे बहुत अधिक बातें मैंने यहां कही हैं, पर यह प्रथम अभीप्साका आरंभ ही है — उसे जानना और इस चिर-मिथ्यात्वमें निवास न करना जिसमें वस्तुएं इतनी विकृत, इतनी कृत्रिम हो गयी हैं; यह एक सुखदायी चीज होगी; एक ऐसी चीजको ढूंढ़ निकालना जिसके लिये जीवन धारण करना सार्थक हो।

> "....दूसरा पग है इस अभीप्साको सबल बनाना, उसे सर्वदा जागृत बनाये रखना, उसे जीवंत और शक्तिशाली बनाना।"
>
> (मातृवाणी — वार्त्तालाप)

कभी-कदाच तुम यह कह बैठते हो, "ओह! हां, मैं भगवान्‌को ढूंढ़नेकी बात सोच रहा हूं", और ऐसे समयमें कहते हो जब कोई दुःखदायी बात उपस्थित होती है, जब तुम थोड़ा ऊबे हुए होते हो, क्योंकि तुम अपनेको थका-मांदा अनुभव करते हो — हां, ऐसे बहुत सारे सामान्य कारण होते हैं —, और एकाएक तुम्हें याद हो आता है कि योग नामकी भी एक चीज है, भगवान् नामकी कोई चीज है जिसे जानना चाहिये और वह तुम्हें जीवनकी इस नीरसतासे बाहर निकाल ले जा सकती है। यह चीज नहीं बल्कि —

> "....एकमात्र एकाग्रता ही तुम्हें इस लक्ष्यतक

> पहुंचायगी — भगवान्‌की इच्छा और उनके उद्देश्योंके प्रति संपूर्ण और सर्वांगीण आत्मार्पणकी स्थिति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे की गयी भगवान्‌पर एकाग्रता।"
>
> (मातृवाणी — वार्त्तालाप)

यही दूसरा पग है। कहनेका मतलव, तुम भगवान्‌को खोजने और जाननेकी तथा उसके अनुकूल जीवन वितानेकी इच्छा करना आरंभ कर देते हो। इसके साथ-ही-साथ तुम्हें यह अनुभव करना चाहिये कि यह चीज इतनी बहुमूल्य है, इतनी महत्त्वपूर्ण है कि तुम्हारा संपूर्ण जीवन भी इसे प्राप्त करनेके लिये पर्याप्त नहीं है। फिर पहली क्रिया होती है आत्मदानकी; तुम अपने-आपसे कहते हो, "अब मैं स्वयं अपना ही बना रहना नहीं चाहता, अपनी तुच्छ व्यक्तिगत संतुष्टियोंके लिये ही नहीं जीना चाहता, मैं इस अद्‌भुत वस्तुसे संबंध स्थापित करना चाहता हूं जिसे मनुष्यको अवश्य पाना चाहिये, अवश्य जानना चाहिये, अवश्य जीवनमें उतारना चाहिये और जिसके लिये कि मैं अभीप्सा करता हूं।"

> "अपने हृदयमें एकाग्र होओ। उसके भीतर पैठ जाओ; अंदर चले जाओ और गहराईमें तथा दूरतक चले जाओ, जितनी दूर जा सको चले जाओ। तुम्हारी चेतनाके जो सब तार चारों ओर बिखरे हैं उन्हें एकत्र करो, सबको एक साथ लपेट लो, अपनी आंतर सत्ताकी निश्चल-नीरवतामें कूद पड़ो और डूब जाओ।"
>
> (मातृवाणी — वार्त्तालाप)

स्वभावतः ही जब मैं हृदयकी बात कहती हूं तो उसका मतलब शरीरका स्थूल अंग नहीं है, बल्कि सत्ताका आंतरिक, चैत्य केंद्र है।

* *

तुम किसी व्यक्तिगत और अहंकारपूर्ण उद्देश्यसे पूर्णता प्राप्त करनेकी कोशिश नहीं करते, बल्कि भगवान्को अभिव्यक्त करनेके उद्देश्यसे करते हो, इसका तात्पर्य है अपना सब कुछ भगवान्की सेवा-में लगा देना। तुम व्यक्तिगत रूपसे अपने-आपको पूर्ण बनानेकी इच्छासे, महज अपने लिये योग नहीं करते, वरन् जो भागवत कार्य करना यहां अभिप्रेत है उसके लिये, भागवत इच्छाको पूर्ण करनेके लिये करते हो।

जबतक तुम्हारे अंदर कोई व्यक्तिगत आकांक्षा है, कोई व्यक्ति-गत कामना, कोई अहंकारपूर्ण इच्छा है, तबतक तुममें एक प्रकारका मिश्रण है, वह भागवत संकल्पकी विशुद्ध अभिव्यक्ति नहीं है। एक-मात्र महत्त्वपूर्ण वस्तु हैं भगवान्, उनकी इच्छा, उनकी अभिव्यक्ति, उनका प्राकटच। तुम उसीके लिये हो, तुम वही हो और इससे भिन्न अन्य कोई चीज नहीं हो। अगर तुम्हारे अंदर 'मैं' का, 'अहं' का, पृथक् अस्तित्वका बोध विद्यमान है तो इसका मतलब है कि तुम अभी भी वह चीज नहीं हो जो तुम्हें होना चाहिये। मैं यह नहीं कहती कि यह बात आनन-फाननमें की जा सकती है, बल्कि यह कहती हूं कि इस विषयका सत्य यही है।

क्योंकि इस स्तरपर, आध्यात्मिक स्तरपर बहुत अधिक लोग— सच पूछो तो जो लोग आध्यात्मिक जीवन ग्रहण करते हैं उनमेंसे प्रायः सबके सब लोग —— व्यक्तिगत कारणोंसे, सब प्रकारके व्यक्तिगत कारणोंसे ही योग करते हैं: कुछ लोग जीवनसे उकता जानेके कारण, कुछ लोग दुःखी होनेके कारण, कुछ दूसरे अधिक ज्ञान पानेकी इच्छा होनेके कारण, फिर कुछ दूसरे आध्यात्मिक रूपसे महान् बननेकी कामनाके कारण, फिर कुछ और लोग ऐसी चीजें सीखनेकी चाह होनेके कारण योग करते हैं जिन्हें वे दूसरोंको सिखा सकें अर्थात् गुरु बननेकी आकांक्षासे योग करते हैं और इस तरह योग करनेके हजारों व्यक्तिगत कारण होते हैं। परंतु ऐसे लोग बहुत नहीं होते

जो अपने-आपको भगवान्‌के हाथोंमें दे देनेका सीधा-सा कार्य — इसकी पूरी पवित्रता और निरवच्छिन्नताको बनाये रखकर — करें जिसमें कि भगवान् हमें अपना लें और वह अपनी मर्जीके मुताबिक हमारा व्यवहार करें। ऐसा करनेपर तुम सीधे अपने लक्ष्यपर पहुंच जाते हो और भूल करनेका खतरा कभी नहीं उठाते। परंतु अन्य सभी उद्देश्योंमें मिलावट होती है, उनपर अहंकारकी छाप होती है और वे तुम्हें इधर-उधर तथा तुम्हारे लक्ष्यसे बहुत दूर ले जा सकते हैं।

इस बोधका होना ही सबसे उत्तम मनोभाव है कि तुम्हारे अस्तित्वका एकमात्र कारण, तुम्हारा एकमात्र उद्देश्य है भगवान्‌के प्रति सर्वांगीण रूपसे, संपूर्ण रूपसे परिपूर्ण आत्मनिवेदन करना, इस हदतक कर देना कि तुम अपने और भगवान्‌के बीच विभेद करनेमें असमर्थ हो जाओ, तुम पूर्णतः, अखंडतः भगवान् ही बन जाओ और तुम दोनोंके बीच किसी भी प्रकारकी कोई व्यक्तिगत प्रतिक्रिया न घुसने पाये। और केवल यही वह मनोभाव है जिसके सहारे तुम प्रत्येक चीजसे, यहांतक कि स्वयं अपने-आपसे भी — क्योंकि सभी खतरोंमें बड़े-से-बड़ा खतरा वह होता है जो स्वयं अपने-आपसे, अपने अहंकारपूर्ण आत्मासे आता है — जीवनमें सुरक्षित रहते हुए निर्विघ्न उन्नति कर सकते हो।

योगके लिये कैसे तैयार हों?

"योगसाधनाके लिये अपनेको तैयार करनेके लिये हमें क्या करना चाहिये?"

(मातृवाणी — वार्त्तालाप)

जिस महिलाने मुझसे यह प्रश्न पूछा था उसको मैंने उत्तर दिया

था — "सबसे पहले सचेतन होना चाहिये"। अतएव उसने सचेतन होनेकी चेष्टा की और कुछ महीनोंके बाद आकर वह बोली, "ओह! कितना बुरा उपहार आपने मुझे दिया! पहले मेरा लोगोंके साथ संबंध था, वे सभी अच्छे लोग थे, उनके प्रति मुझे सद्भावना थी, वे भी मेरे साथ सुन्दर व्यवहार करते थे और अब, जबसे मैंने सचेतन होना आरंभ किया है, मैं अपने अंदर ऐसी सभी प्रकारकी चीजें देख रही हूं जो सर्वथा सुन्दर नहीं हैं, और उसके साथ-ही-साथ दूसरोंमें भी ऐसी चीजें देखती हूं जो जरा भी आकर्षक नहीं हैं!" मैंने उत्तर दिया, "यह बिलकुल संभव है! यदि तुम तकलीफ उठाना नहीं चाहती तो यह अधिक अच्छा है कि तुम अपने अज्ञानसे बाहर न निकलो।"

अतएव सबसे पहला पग है यह जानना कि आया तुम सत्यको देखना और जानना चाहते हो या अपने अज्ञानमें ही आरामसे पड़े रहना चाहते हो।

> "....आज औसत मानवका मनोभाव क्या है? ...जैसे ही वह किसी ऐसी चीजको देखता है जो पूरी सच्चाईके साथ भागवत स्वभावमें हिस्सा बंटाती है, वैसे ही वह क्या क्रोध और विद्रोहसे भभक नहीं उठता? क्या वह यह नहीं समझता कि भगवान्‌के शासनका मतलब है उसकी प्रियतम संपत्तियोंका नाश?"

इसका बिलकुल स्पष्ट अर्थ यह है कि जबतक तुम अपने तुच्छ व्यक्तिगत अहंमें निवास करते हो तबतक तुम कभी ऐसा कार्य नहीं कर सकते, ऐसी छलांग नहीं भर सकते जो तुम्हें भगवान्‌के साथ तादात्म्य प्राप्त करनेके योग्य बनाये।

इस मौकेपर मैं तुम्हें यह बात बतला सकती हूं: बहुत पहले यहां ऐसे लोग थे जो यहां इस कारण आये थे कि वे समझते थे कि

आश्रममें भर्त्ती हो जानेसे वे अमर हो जायंगे और उन्होंने अमर होनेके लिये बहुत अभीप्सा की। वे बूढ़े लोग थे जिन्हें अपने सम्मुख अब लंबा रास्ता नहीं दिखायी पड़ता था और जो उसे असीम रूपसे लंबा बनानेकी इच्छा करते थे। कारण, यही चीज है जिसे मनुष्य "अमरता" के नामसे जानते हैं — वे जो कुछ हैं बस उसे ही अनंत कालतक बनाये रहना। अतएव, जिस व्यक्तिने सबसे पहले यह मत प्रकट किया उसे मैंने उत्तर दिया — "मैं नहीं जानती कि प्रत्येक मनुष्य अमर बन सकता है या नहीं — संभवतः नहीं बन सकता — परंतु जिन लोगोंमें अमर होनेकी क्षमता है उनमेंसे भी कितने लोग ऐसे हैं जो उसका मूल्य चुकानेके लिये प्रस्तुत हैं? क्योंकि, उसके लिये जिन चीजोंका त्याग करना जरूरी है उनकी मिकदार इतनी अधिक है कि शायद आधे रास्तेमें जाकर वे कह उठेंगे: 'ओह! नहीं, मूल्य बहुत अधिक है!'" मुझे उस चित्रकारकी बात याद है जिससे अमरत्वकी संभावनाके संबंधमें मेरी बातचीत हुई थी। उसने मुझसे पूछा — "नया जगत् किस तरहका होगा?" मैंने उससे कहा — "उदाहरणके रूपमें, संभवतः वस्तुएं स्वयं अपने-आपमें ज्योतिर्मय होंगी और जैसे सूर्यसे पृथ्वीपर प्रतिफलित ज्योति आती है उस तरहकी फिर कोई ज्योति नहीं होगी"। जिस समय मैं उससे यह बात कह रही थी, मैंने देखा कि उसका चेहरा अधिकाधिक लंबा होता जा रहा है, अधिकाधिक गंभीर होता जा रहा है और अंतमें वह बोला, "परंतु उस समय मनुष्य छायाके अभावमें चित्रकारी कैसे कर सकता है? वह छाया ही तो वस्तुओंकी ज्योतिको स्पष्ट प्रकट करती है।" ... मैंने उससे कहा — "आपने समस्याकी ठीक चाभी प्रदान की है।"

बहुतेरे, बहुत बड़ी संख्यामें ऐसे लोग हैं जो पूछते हैं कि नया जीवन कैसा होगा और मैं उन्हें उत्तर देती हूं, "उस समय शक्तियोंमें परस्पर आदान-प्रदान होगा, प्रवाहित होती रहनेवाली एक शक्ति होगी, शरीरकी रचना बिलकुल दूसरे ढंगकी होगी, ये सब कदाकार

अंग विलीन हो जायंगे और उनकी जगह मनोवैज्ञानिक क्रियाएं ले लेंगी तथा खानेकी, सदा खाते रहनेकी आवश्यकता दूर हो जायगी।" एक बार फिर मैंने लंबे होते हुए चेहरे देखे! लोगोंने कहा — "ओह! जो सबसे अच्छी चीजें हम खाते हैं वे सब दूर हो जायेंगी!"

ये सब छोटे-छोटे उदाहरण हैं, ऐसे दूसरे बहुतेरे उदाहरण हैं, अधिक महत्त्वपूर्ण बातें हैं। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, सबसे अधिक कठिन चीज है अहंकारका त्याग। जो व्यक्ति इसके लिये तैयार नहीं है उसके लिये यह मृत्युके ही समान है और ऐसी मृत्युके समान है जो शारीरिक मृत्युसे बहुत अधिक है। क्योंकि उनके लिये अहंकार-की मृत्यु ठीक अस्तित्वके ही विलीन हो जानेके समान है — वैसे यह बात सही नहीं है पर वह ऐसी ही छाप डालना आरंभ करती है। अमर होनेके लिये मनुष्यको समस्त सीमाबंधनोंका परित्याग करना चाहिये और अहं ही सबसे बड़ा सीमाबंधन है; अतएव, यदि "मैं" अमर नहीं हूं तो उससे भला क्या लाभ?

आवश्यक मौलिक गुण

"वह कौन-सा मौलिक गुण है जिसे हमें अपनेको आध्यात्मिक जीवनके लिये तैयार करनेके लिये विकसित करना चाहिये?"

मैंने अनेक बार तुम्हें बताया है, पर आज उसे दुहरा देनेका एक मौका मिला है। वह है सच्चाई — सत्यनिष्ठा।

इस सच्चाईको पूर्ण और अमिश्र होना चाहिये, क्योंकि सच्चाई ही आध्यात्मिक पथपर तुम्हारा एकमात्र संरक्षक है। अगर तुम

सच्चे नहीं हो तो एकदम दूसरे पगपर ही तुम्हारा गिर पड़ना और अपनी नाक तोड़ लेना निश्चित है। सभी प्रकारकी शक्तियां, इच्छाएं, प्रभाव और सूक्ष्म सत्ताएं प्रतीक्षा करती रहती हैं और ज्योंही इस सच्चाईमें कोई छोटी-सी भी दरार देखती हैं त्योंही तुरत इस दरारके भीतरसे दौड़ पड़तीं और तुम्हें अव्यवस्थित करना आरंभ कर देती हैं।

अतएव, कोई चीज करनेसे पहले, कोई चीज आरंभ करने, किसी चीजके लिये कोशिश करनेसे पहले तुम इस विपयमें सर्वप्रथम निस्संदिग्ध हो जाओ कि तुम केवल उतने ही सच्चे नहीं हो जितने कि तुम हो सकते हो बल्कि और भी अधिक सच्चा होना चाहते हो।

क्योंकि यही तुम्हारा एकमात्र संरक्षक है।

क्या इस मौलिक गुणको आयत्त करनेका यह प्रयास समष्टिगत भी हो सकता है ?

हां, अवश्य ही यह समष्टिगत भी हो सकता है। प्राचीन काल-में दीक्षा-परंपराओंमें इसका प्रयत्न किया गया था। आज भी, कम या अधिक गुप्त समाजों या छोटे-मोटे दलोंमें इस बातकी कोशिश की जाती है जिससे कि सारी समष्टि पर्याप्त रूपमें ऐक्यवद्ध हो सके और एक ऐसा परिणाम उत्पन्न करनेके लिये पर्याप्त पूर्ण समष्टिगत प्रयत्न कर सके जो कि एक व्यक्तिके लिये होनेवाले परिणामकी जगह सारे दलके लिये होनेवाला परिणाम हो।

परंतु स्वभावतः ही यह बात समस्याको भीषण रूपसे जटिल बना देती है। प्रत्येक बार ही जब बैठक होती है एक समष्टिगत इकाई उत्पन्न करनेकी चेष्टा की जाती है; परंतु समष्टिगत रूपसे कोई गुण आयत्त करनेके लिये एक महान् प्रयासकी आवश्यकता होती है। फिर भी यह असंभव नहीं है।

*   *

"क्या मनुष्यके लिये पूर्ण सच्चा होना संभव है?"

निस्संदेह नहीं, यदि वह वही बना रहे जो कि वह है। परंतु अपने-आपको इस प्रकार रूपांतरित कर लेना उसके लिये संभव है कि वह पूर्णतः सच्चा बन जाय।

सबसे पहले, यह कह देना आवश्यक है कि सच्चाई एक क्रम-वर्द्धमान वस्तु है; जैसे-जैसे सत्ता प्रगति करती और वर्द्धित होती है और जैसे-जैसे विश्व भूतभावके अंदर अपनेको विकसित करता है वैसे-वैसे सच्चाई भी निरंतर अपने-आपको पूर्ण बनाती जाती है। यदि वृद्धिमें रुकावट आ जाय तो निश्चित रूपमें विगत कलकी सच्चाई आनेवाले कलकी असच्चाईमें परिणत हो जायगी।

पूर्ण रूपसे सच्चा बननेके लिये मनुष्यमें कोई पसंदगी, कोई इच्छा, कोई विरक्ति, कोई आकर्षण, कोई विकर्षण, कोई आसक्ति, कोई सहानुभूति या कोई विद्वेष नहीं होना चाहिये। उसे वस्तुओं-संबंधी एक पूर्ण, सर्वांगीण दृष्टि प्राप्त होनी चाहिये जिसमें प्रत्येक वस्तु अपने स्थानमें होती है और प्रत्येक वस्तुके प्रति उसका एक ही मनोभाव होता है — वह मनोभाव जो सत्य-दृष्टि प्रदान करता है। स्पष्ट ही उसे संसिद्ध करना मनुष्यके लिये एक बहुत कठिन कार्यक्रम है, और जबतक मनुष्य अपनेको दिव्य बनानेका निश्चय नहीं कर लेता तबतक उसके लिये इन सब परस्पर-विरोधी भावोंसे मुक्त होना प्रायः असंभव है। और, जबतक वह इन भावोंको अपने अंदर वहन करता है तबतक वह पूर्ण रूपसे सच्चा भी नहीं हो सकता। मन, प्राण और यहांतक कि शरीरकी क्रियाएं भी अपने-आप मिथ्या बन जाती हैं। मैं यहां शारीरिक क्रियाओंपर जोर देती हूं, क्योंकि इंद्रियोंकी क्रियाएं भी मिथ्या बन जाती हैं। जबतक तुम्हारे अंदर कोई पसंदगी है तबतक तुम वस्तुओंको ठीक वैसे ही नहीं देखते, वैसे ही नहीं सुनते, वैसे ही नहीं आस्वादन करते, वैसे ही नहीं अनुभव करते जैसी कि वे अपने सत्य-स्वरूपमें होती हैं। जबतक ऐसी

चीजें हैं जो तुम्हें प्रसन्न करती हैं और ऐसी चीजें हैं जो तुम्हें अप्रसन्न करती हैं, जबतक वे तुम्हारे अंदर आकर्षण या विकर्षण जगाती हैं तबतक तुम उन्हें उनके सत्य-स्वरूपमें नहीं देख सकते; तुम उन्हें अपनी प्रतिक्रिया, अपनी अभिरुचि या अपने विकर्षणके भीतरसे देखते हो। इंद्रियां ऐसे साधन हैं जो उसी तरह मिथ्या बन जाते हैं जैसे कि संवेदन या अनुभव या विचार मिथ्या बन जाते हैं। अतएव, जो कुछ तुम देखते हो, जो कुछ महसूस करते हो, जो कुछ अनुभव करते हो और जो कुछ सोचते हो उसके विषयमें यदि तुम निस्संदिग्ध होना चाहते हो तो तुम्हें पूर्ण अनासक्तिकी एक अवस्थामें पहुंच जाना होगा। स्पष्ट ही यह कोई आसान काम नहीं है; परंतु तबतक तुम्हारी देखने-समझनेकी क्रिया संपूर्ण सत्य नहीं हो सकती और इसलिये वह सच्ची नहीं होगी।

स्वभावतः ही यह उच्चतम स्थिति है। परंतु अधिक स्थूल प्रकारकी कुटिलताएं भी हैं जिन्हें प्रत्येक आदमी समझता है और जिसके ऊपर जोर देना, मैं समझती हूं, आवश्यक नहीं है। उदाहरणार्थ, कहना एक बात और सोचना दूसरी बात, एक कार्य करनेका ढोंग करना पर करना दूसरा कार्य, एक इच्छा व्यक्त करना जो अपनी सच्ची इच्छा न हो आदि-आदि,—मैं यहां उस घोर भद्दे मिथ्यापनकी चर्चा नहीं करती जब कि मनुष्य बात जो कुछ है उससे भिन्न कहता है, मैं उस कूटनीतिपूर्ण ढंगसे व्यवहार करनेकी बात भी नहीं कहती जिसमें मनुष्य कोई परिणाम प्राप्त करनेकी भावनासे कोई काम करता है, एक विशेष प्रभाव उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे कोई बात कहता है, और ऐसी ही और मिली-जुली बातोंकी चर्चा नहीं करती हूं जो स्वयं तुम्हारा ही तुमसे खंडन कराती हैं—यह सब ऐसी कपटता है जो प्रत्येक व्यक्तिकी समझमें आसानीसे आ जानेके लिये पर्याप्त स्पष्ट है।

परंतु दूसरी कपटताएं हैं जो अधिक सूक्ष्म हैं और उन्हें समझ

पाना अधिक कठिन है। उदाहरणके लिये, जबतक तुम्हारे अंदर सहानुभूति और विद्वेष हैं तबतक बिलकुल स्वाभाविक रूपमें और, मानो, अपने-आप उस वस्तुके विषयमें तुम्हारी राय अनुकूल होगी जिसके प्रति तुम्हें सहानुभूति है और उसके विषयमें प्रतिकूल होगी जिसके प्रति तुम्हें विद्वेष है। यहां भी सच्चाईका अभाव खूब जाज्वल्यमान होगा। परंतु ऐसा हो सकता है कि तुम अपनेको धोखा दो और यह न देखो कि तुम कपटी हो। ऐसी अवस्थामें कारण यह होता है कि तुम्हें,— यदि ऐसा कहा जा सके तो,— मानसिक कपटताका सहयोग प्राप्त हुआ होता है। कारण, जहां यह सच है कि सच्चाईका तत्त्व सर्वत्र एक ही होता है वहां कपटता सत्ताकी अवस्थाओं और अंगोंके अनुसार कुछ-कुछ भिन्न स्वरूप ग्रहण कर लेती है।

परंतु, चाहे कपटता किसी भी प्रकारकी क्यों न हो, सभी कपटताओंका मूल स्रोत एक ही प्रकारकी क्रिया होती है जो कामना-से और व्यक्तिगत उद्देश्योंकी सिद्धिकी चेष्टासे निकलती है, अहंकारसे तथा अहंकारसे उत्पन्न होनेवाली सभी प्रकारकी सीमाओंके संयोगसे, तथा कामनासे उत्पन्न होनेवाली सभी प्रकारकी विकृतियोंसे निकलती है।

सच कहा जाय तो, जबतक अहंकार है तबतक तुम, यदि वैसा होनेके लिये प्रयत्न भी करो तो, पूर्ण रूपसे सच्चे नहीं हो सकते। तुम्हें अहंके परे चले जाना होगा, भागवत संकल्पके हाथोंमें अपने-आपको संपूर्ण दे देना होगा, बिना कुछ बचाये या हिसाब लगाये अपने-आपको समर्पित कर देना होगा। केवल तभी तुम पूर्ण रूपसे सच्चे बन सकते हो, उससे पहले नहीं।

परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि जितने सच्चे तुम हो उससे अधिक सच्चे बननेका प्रयास तुम्हें नहीं करना चाहिये और यह कह-कर प्रतीक्षा करनी चाहिये कि, "जबतक मेरा अहंकार विलीन नहीं

हो जाता तबतक मैं सच्चा बननेके लिये प्रतीक्षा करूंगा।" क्योंकि हम वाक्यको उलट सकते और कह सकते हैं कि यदि तुम सच्चाईके साथ प्रयास न करो तो तुम्हारा अहंकार दूर नहीं होगा।

सच्चाई सभी सच्ची उपलब्धियोंका आधार है। यह साधन है, यह पथ है और यह लक्ष्य भी है। सच्चाईके बिना, तुम निश्चित रूपसे असंख्य बार गलत पग रख सकते हो और अपनी तथा दूसरोंकी जो हानि तुम करोगे उसकी पूर्ति करनेमें ही निरंतर लगे रहोगे।

अधिकंतु, सच्चा होनेमें एक अद्‌भुत आनंद है। सच्चाईका प्रत्येक कार्य स्वयं अपने अंदर ही अपना पुरस्कार भी वहन करता है; जब मनुष्य मिथ्यात्वके एक कणका भी परित्याग करता है तो उसे पवित्रताकी, उत्थानकी और मुक्तिकी भावनाका अनुभव होता है। सच्चाई है हमारा आश्रय, संरक्षक, पथप्रदर्शक; अंतमें बस यही है रूपांतरकारी शक्ति।

योगके दो पथ

...."दो पथ योगके लक्ष्यतक पहुंचाते हैं: तपस्या और आत्मसमर्पण।"

समर्पण क्या चीज है?

"समर्पणका मतलब यह है कि हम अपने-आपको पूर्णतः भगवान्‌के हाथोंमें अर्पित कर देते हैं।"

हां, और उसके बाद क्या होता है? यदि तुम पूर्ण रूपसे अपने-को भगवान्‌के हाथोंमें दे देते हो तो फिर भगवान् ही योग करते हैं, तब तुम उसे बिलकुल नहीं करते; फिर यह बहुत कठिन नहीं होता।

परंतु, यदि तुम तपस्या करते हो, तो योग तुम स्वयं करते हो और सारी जिम्मेदारी तुम्हारे ऊपर होती है — बस, यहीं है "खतरा"। परंतु ऐसे लोग होते हैं जो पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर रखना चाहते हैं और उसके खतरोंको भी उठाते हैं, क्योंकि वे बहुत स्वतंत्र प्रकृतिके होते हैं। संभवतः उन्हें बहुत शीघ्रता नहीं होती — यदि अंततक पहुंचनेमें उन्हें कई जन्म भी लग जायें तो इससे उनका कुछ भी बनता-बिगड़ता नहीं। परंतु कुछ दूसरे लोग ऐसे होते हैं जो बहुत शीघ्र पहुंचना चाहते हैं तथा लक्ष्यतक पहुंचनेके विषयमें अधिक निस्संशय होना चाहते हैं, हां. ऐसे लोग समूची जिम्मेदारी भगवान्‌पर छोड़ देते हैं।

* *

भगवान्‌के प्रति पूर्ण आत्मार्पण करनेकी तीन विशेष विधियां हैं:

१. सारा अभिमान तजकर पूर्ण विनम्रताके साथ 'उनके' चरणों-में साष्टांग प्रणिपात करना।

२. 'उनके' सामने अपनी संपूर्ण सत्ताको रख देना, अपने शरीरको सिरसे लेकर पैरतक पूरी तरह खोल देना जिस प्रकार कि कोई पुस्तक खोली जाती है, अपने केंद्रोंको इस प्रकार विस्तारित कर देना कि उनकी सारी क्रियाएं ऐसी पूर्ण सच्चाईके साथ दिखायी पड़ने लगें जो किसी भी चीजको छिपी नहीं रहने देतीं।

३. 'उनकी' बांहोंमें आश्रय लेना, प्रेम और पूर्ण भरोसेके साथ 'उनमें' लीन हो जाना।

इन गतियोंके संग इन तीन सूत्रोंको या अवस्थाविशेपके अनुसार इनमेंसे किसी एकको जोड़ा जा सकता है:

(१) तेरी इच्छा कार्यान्वित हो, न कि मेरी।

(२) जैसा तू चाहे, जैसा तू चाहे।

(३) मैं सदाके लिये तुम्हारा हूं।

साधारण तौरपर जब ये क्रियाएं उचित ढंगसे की जाती हैं तो

परिणामस्वरूप पूर्ण तादात्म्यकी प्राप्ति हो जाती है, अहंका विलय हो जाता है और अलौकिक आनंदका प्रवाह फूट पड़ता है।

* *

"अपनी प्रकृतिके दुराग्रही अंगोंको समर्पणके लिये कैसे राजी किया जाय।"

यदि कोई बच्चा समझता नहीं है तो उसे जिस भांति समझाते हो ठीक उसी भांति उन्हें भी सब प्रकारसे, रूपक, व्याख्या, प्रतीक-द्वारा समझानेका प्रयत्न करो। उन्हें सत्ताके अन्य अंगोंके साथ ऐक्य तथा सामंजस्य रखनेकी आवश्यकता समझाओ; उनके साथ समझ-दारीसे बात करो, उन्हें अपने कर्म और उनके फलके बारेमें सचेतन करनेका प्रयत्न करो। सबसे बड़ी बात है, धैर्य बनाये रखो, वे ही चीजें दुहराते रहनेसे थक मत जाओ।

"इस कर्ममें क्या मन कोई सहायता दे सकता है?"

हां, यदि मनका कोई भाग पूर्णतः आलोकित हो, यदि वह चैत्य ज्योतिके प्रति समर्पित हो और उसे सत्यका कुछ बोध हो तो मन बहुत अधिक सहायक हो सकता है. वह ठीक ढंगसे सभी बातोंको समझा सकता है।

"एकदम आरंभसे ही आत्मसमर्पणका पूर्ण होना संभव नहीं है न?"

साधारण रूपमें नहीं। इसमें थोड़ा-बहुत समय लगता है। परंतु कभी-कभी एकाएक परिवर्तन हो जाता है। इन सब चीजोंको ब्योरे-वार समझानेमें बहुत अधिक समय लगेगा। तुम शायद जानते होओ कि साधनाकी सभी परंपराओंमें यह कहा जाता था कि मनुष्यका स्वभाव बदलनेके लिये ३५ वर्षोंकी आवश्यकता होती है! अतएव

एक क्षणमें ही इसके हो जानेकी आशा तुम्हें नहीं करनी चाहिये।

"यदि किसीका स्वभाव बदलनेके लिये ३५ वर्षकी आवश्यकता होती है तो भला कोई अभीसे भगवान्‌के प्रति पूर्ण समर्पण कैसे कर सकता है?"

यह कार्य तेजीसे भी हो सकता है; यह उस पथपर निर्भर करता है जिसका अनुसरण साधक करता है। तुम्हें याद होगा, हमने तुम लोगोंसे बिल्लीके बच्चे और बंदरके बच्चेके मनोभावकी बात कही थी।[1] यदि तुम आज्ञाकारी बिल्लीके बच्चेकी तरह (बिल्लीके ऐसे बच्चे भी होते हैं जो बहुत असंयत होते हैं, मैंने उन्हें देखा है) होना स्वीकार करो, एक छोटे-से विनीत बच्चेकी तरह बन जाना मंजूर करो तो कार्य बड़ी तेजीसे आगे बढ़ेगा। ध्यान रखो, यह कहना बड़ा आसान है कि "बिल्लीके बच्चेका मनोभाव ग्रहण करो", पर इसे करना उतना आसान नहीं है। तुम्हें यह विश्वास नहीं करना चाहिये कि बिल्लीके बच्चेका मनोभाव ग्रहण करनेका तात्पर्य है समस्त व्यक्तिगत प्रयासका परिहार कर देना। क्योंकि तुम बिल्लीके बच्चे नहीं हो, मनुष्य बिल्लीके बच्चे नहीं हैं! तुम्हारे अंदर ऐसे अनगिनत तत्त्व हैं जो अपने-आपपर विश्वास करनेके अभ्यासी हैं, जो अपना निजी काम करना चाहते हैं, और इन सब तत्त्वोंको संयमित करना, सब प्रकारकी परिस्थितियोंके हाथमें अपनेको छोड़ देना बहुत अधिक कठिन है। यह बहुत ही कठिन है। सबसे पहले, चिंतनशक्तिका

---

[1]श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि शिष्य दो मनोभावोंमेंसे एक चुन सकता है: बिल्लीके बच्चेका निष्क्रिय विश्वास जो अपनेको उठा ले जानेके लिये मांके ऊपर छोड़ देता है (यह समर्पणका पथ है, अत्यंत सुनिश्चित) और बंदरके बच्चेका सक्रिय मनोभाव जो अपनी मांके साथ चिपक जाता है (यह व्यक्तिगत प्रयासका पथ है)।

यह अद्भुत कार्य है जो देखना, आलोचना करना, विश्लेषण करना, संदेह करना, समस्या सुलझानेकी चेष्टा करना चाहती है, कहती है, "आखिर यह वात ऐसी है", "क्या इस तरह यह कुछ और अच्छी नहीं हो सकती ?" आदि-आदि। फिर यह चलता रहता है, चलता रहता है और कहां है भला वह विल्लीका बच्चा ? . . . . . विल्लीका बच्चा तो सोचता ही नहीं ! वह इस सबसे मुक्त है और यही कारण है कि उसके लिये ऐसा करना बहुत आसान है !

चाहे तुम जिस किसी पथका क्यों न अनुसरण करो, व्यक्तिगत प्रयास तबतक बराबर आवश्यक होता है जबतक कि तादात्म्यका क्षण नहीं आ जाता। उस समय सभी प्रयास पुराने-फटे कपड़ेकी तरह तुमसे झड़ जाते हैं, तुम दूसरे व्यक्ति बन जाते हो; तुम्हारे लिये जो कुछ पहले असंभव था वह अब केवल संभव ही नहीं हो जाता बल्कि अनिवार्य बन जाता है, तुम अन्यथा कर ही नहीं सकते।

तुम्हें सचेत, नीरव होना चाहिये, तुम्हें आंतरिक प्रेरणाकी प्रतीक्षा करनी चाहिये, बाहरी प्रतिक्रियाओंके वश कुछ नहीं करना चाहिये, तुम्हें निरंतर, नियमित रूपसे बस उसी ज्योतिसे परिचालित होना चाहिये जो ऊपरसे आती है, तुम्हें बस उसी ज्योतिकी प्रेरणाके अधीन कार्य करना चाहिये, अन्य किसी चीजके अधीन नहीं। कभी यह नहीं सोचना चाहिये, यह प्रश्न नहीं उठाना चाहिये, यह नहीं पूछना चाहिये, "मुझे यह करना चाहिये या वह", बल्कि — जानना, देखना, सुनना चाहिये। एक ऐसी आंतरिक निश्चयताके साथ कार्य करो जो प्रश्न नहीं करती, संदेह नहीं करती, क्योंकि निर्णय तुम्हारे पाससे नहीं आता, वह ऊपरसे आता है। हां, वह बहुत शीघ्र भी आ सकता है अथवा तुम्हें उसके लिये शायद दीर्घ कालतक प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है, यह निर्भर करता है मनुष्यकी पहलेकी तैयारीके ऊपर, अन्य बहुतसी चीजोंपर। तबतक तुम्हें उसकी इच्छा करनी चाहिये, आग्रहपूर्वक बार-बार इच्छा करनी चाहिये और सर्वोपरि बात यह कि

कभी धैर्य और साहस नहीं खोना चाहिये। अगर आवश्यक हो तो एक ही चीजको हजार बार दुहराओ, यह समझते हुए कि शायद हजारवें बार तुम परिणाम अवश्य उपलब्ध कर लोगे।

तुम एक टुकड़ेके ही नहीं बने हुए हो। तुम्हारा वर्तमान शरीर कभी-कभी आकस्मिक होता है। यदि तुम्हारे अंदर सचेतन अंतरात्मा होता है जो तुम्हारे शरीरकी रचनाको प्रभावित करता है तो फिर तुम किसी ऐसे व्यक्तिसे, ऐसे अंतरात्मासे अनंत रूपमें अधिक अच्छे ढंगसे तैयार किये हुए व्यक्ति होते हो जो यह बिना जाने कि वह कहां जा रहा है सीधे सिरके वल शरीरमें आ गिरा था: उस ढंगसे आये हुए लोगोंको अंधकारमें इस प्रकार आ गिरी हुई अपनी चेतना-को ऊपर उठानेके लिये बहुत कठिन परिश्रम करना होता है। आंत-रिक तैयारीकी स्थिति पूर्व जीवनोंसे प्राप्त हो सकती है या वर्तमान जीवनसे प्राप्त हो सकती है; अथवा अपने सर्वांगीण विकासमें तुम एक मोड़पर पहुंच चुके हो और ऐसी परिस्थितियोंसे तुम्हारा ठीक-ठीक संबंध हो गया है जो अंतिम पग उठानेके लिये आवश्यक हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम इस मोड़पर पहुंचनेसे पहले हजार वार पृथ्वीपर जीवन यापन नहीं कर चुके हो।

आध्यात्मिक जीवनकी तैयारीके लक्षण

"ऐसा कब कहा जा सकता है कि व्यक्ति पूर्णयोग-के लिये तैयार है?"

जब कि उसने सभी परिस्थितियोंके बीच अंतरात्माकी पूर्ण समता-को अपने अंदर प्रतिष्ठित कर लिया हो। यह अवस्था अपरिहार्य होती है, यह पूर्णतया आवश्यक आधार होता है; यह कोई बहुत ही

अचंचल, बहुत ही स्थिर, बहुत ही शांतिमय चीज होती है और एक महती शक्तिका अनुभव होता है। यह जड़ता प्राप्त होनेवाली अचंचलता नहीं होती, वरन् एक घनीभूत शक्तिका अनुभव होता है, जो कि तुम्हारी समताको सदैव बनाये रखती है, चाहे जो कुछ भी क्यों न घटित हो, जीवनकी सबसे अधिक भयानक परिस्थितियोंके बीच भी।

इस स्थितिके आनेसे पहले कुछ संकेत आया करते हैं जो यह बताते हैं कि तुम रास्तेपर बढ़ रहे हो।

उदाहरणके लिये, ऐसा समय आता है जब कि तुम्हें ऐसा अक्षरशः अनुभव होता है कि तुम सामान्य चेतनाके अंदर कैद हो गये हो, मानो किसी अति संकरी और कड़ी चीजके अंदर पिच रहे हो। तुम्हें दम घुटता हुआ लगता है, इसका बंधन प्रायः असह्य हो जाता है, तुम मुक्त होनेका प्रयत्न करते हो, किंतु दीवारोंकी टक्करें ही खाते हो और ये दीवारें कांसेकी बनी हुई प्रतीत होती हैं।

इसका अर्थ यह होता है कि अंदरकी चेतना ऐसे बिंदुपर पहुंच गयी है जहां कि बाहरका ढांचा उसके लिये अत्यंत छोटा हो गया है। सामान्य जीवन, सामान्य क्रियाएं, सामान्य संबंध, ये सब कितने छोटे, कितने तुच्छ मालूम होते हैं! तुम अपने अंदर ऐसी शक्ति अनुभव करते हो जो इस अति संकीर्ण आवरणको चीरकर बाहर निकल आना चाहती हैं।

फिर, एक और संकेत यह है कि जब कभी तुम एकाग्र होते हो और अभीप्सा करते हो तो तुम्हें अनुभव होता है कि तुम्हारे अंदर एक शक्ति, एक ज्योति, एक शांति उतर आ रही है। तुम अभीप्सा करते हो और उत्तर तत्काल मिलता है। इससे यह प्रदर्शित होता है कि संबंध भलीभांति स्थापित हो गया है।

"जब किसी अत्यंत संकीर्ण चीजमें बंद हो जानेका बोध होता है तब क्या करना चाहिये?"

सबसे पहले, उग्र कभी नहीं होना चाहिये। उग्र आचरण केवल तुम्हें थका देगा और परिणाम कुछ नहीं निकलेगा।

यदि तुम अपने अंदरकी लौके विषयमें सज्ञान हो तो अपनी अभीप्साकी सारी शक्तिको एकत्रित कर लो और उसे उस लौके प्रति एक पुकारके रूपमें एकाग्र कर दो। जो कुछ संभव हो सब उस ज्वालामें झोंक दो जिसमें कि वह अधिकाधिक प्रज्ज्वलित होती जाय और फिर भी यथासंभव शांत-स्थिर बने रहो। यदि तुम चंचल हो जाओ, यदि तुम घबड़ा जाओ, यदि तुम विक्षुब्ध हो जाओ तो तुम कहीं नहीं पहुंचोगे। पूर्ण रूपसे शांत रहो, विश्वास बनाये रखो, उत्तर अवश्य मिलेगा।

और जब तुम इस स्थितिमें रहो तब अपनी सारी शक्ति और अभीप्साको अंदरकी अग्निशिखामें एकाग्र कर लो। फिर धीरे-धीरे जो बाहरी खोल हो उसपर दबाव डालो, तीव्र वेगके साथ नहीं, पर आग्रहके साथ और जबतक संभव हो तबतक चंचल, उत्तेजित या क्रुद्ध हुए विना दबाव डालो।

यदि तुम ऐसा करो तो तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। एकदम प्रथम बारमें नहीं, यह तो निश्चित है, पर जबतक और जितनी बार ऐसा करना आवश्यक हो तबतक और उतनी बार इसे उस दिनतक करते रहो जबतक कि एकाएक तुम ज्योतिके सागरमें ही न निकल आओ।

* *

"सच्चे आध्यात्मिक जीवनका आरंभ कहांसे होता है ?"

सच्चे आध्यात्मिक जीवनका आरंभ तब होता है जब कि चैत्य सत्ताके अंदर भगवान्‌के साथ संपर्क प्राप्त हो जाता है।

चैत्य सत्ताके अंदर जब व्यक्ति भगवान्‌की उपस्थितिके प्रति सचेतन हो जाता है,—और यदि चैत्य पुरुषके साथ अटूट संपर्क

न भी स्थापित हुआ हो तो कम-से-कम उसके लिये अभीप्सा और प्रयास तो अवश्य हो, — तभी, न कि उससे पहले, आध्यात्मिक जीवनका, सच्चे आध्यात्मिक जीवनका प्रारंभ होता है।

जब व्यक्ति अपने चैत्य पुरुषसे संयुक्त हो जाता है और भागवत उपस्थितिके प्रति सचेतन हो जाता है, जब इस भागवत उपस्थितिसे उसे कर्मकी प्रेरणा मिलने लगती है, जब उसकी इच्छा भगवान्‌की इच्छाकी सचेतन सहकारिणी हो जाती है तो यही आरंभ-स्थल होता है।

इससे पहलेतक व्यक्ति आध्यात्मिक जीवनका अभीप्सु हो सकता है, पर सच्चा आध्यात्मिक जीवन नहीं व्यतीत कर सकता।

* *

"हम कब यह कह सकते हैं कि हम वास्तवमें आध्यात्मिक पथमें प्रविष्ट हो चुके हैं?"

इसका पहला लक्षण (प्रत्येक आदमीके लिये एक ही बात नहीं कही जा सकती), मैं समझती हूं, क्रमानुसार, यह है कि अन्य प्रत्येक चीज तुम्हें एकदम महत्त्वहीन प्रतीत होती है। तुम्हारा समूचा जीवन, तुम्हारे सभी क्रिया-कलाप, तुम्हारी समस्त गतिविधियां जारी रहती हैं यदि परिस्थितियां वैसी रहती हैं, परंतु वे तुम्हें पूर्ण रूपसे महत्त्व-हीन प्रतीत होती हैं; यह सब तुम्हारे जीवनका कारण अब नहीं रह जाता। मैं समझती हूं, यही पहला लक्षण है।

फिर दूसरी चीजें भी हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, तुम्हें यह भान हो सकता है कि प्रत्येक चीज बदली हुई है, तुम अब भिन्न रूपमें जीवन बिता रहे हो, तुम्हारे मनमें एक ज्योति है जो पहले नहीं थी, तुम्हारे हृदयमें एक शांति है जो वहां पहले नहीं थी। इससे कुछ परिवर्तन नहीं आता; पर सामान्यतया सुनिश्चित परिवर्तन कुछ दिन बाद आता है, बहुत विरल प्रसंगोंमें आरंभमें आता है, आरंभमें जब मनुष्य आध्यात्मिक जीवन ग्रहण करनेका निर्णय कर लेता है

तो चेतनामें एक प्रकारकी अंतर्मुखीनता आनेके समय बस एक झलक मिलती है। कभी-कभी इसका आरंभ इस तरह होता है: तुम्हारे अंदर एक बड़ी-सी जगमगाहट, एक महान् हर्ष प्रवेश कर जाता है; परंतु साधारणतया उसके बाद वह पीछेकी ओर चला जाता है; क्योंकि बहुत सारी अपूर्णताएं अभी तुम्हारे अंदर विद्यमान होती हैं...। वह कोई ऊब नहीं होती, तिरस्कारका भाव नहीं होता, पर प्रत्येक चीज तुम्हें इतनी कम दिलचस्प मालूम होती है कि उसमें संलग्न रहनेका कष्ट उठाना उचित नहीं प्रतीत होता। उदाहरणार्थ, जब तुम किन्हीं भौतिक परिस्थितियोंके बीच, चाहे वे सुखदायी हों या दुःखदायी (दोनों छोर मिलते हैं), होते हो तो तुम अपने-आपसे कहते हो, "यह सब मेरे लिये कितना महत्त्वपूर्ण था! पर अब इसका बिलकुल ही कोई मूल्य नहीं!" तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम सचमुच मुड़कर दूसरे छोरपर चले गये हो।

कुछ लोगोंका ख्याल है कि आध्यात्मिक जीवनका चिह्न है एक कोनेमें चुपचाप बैठ जाना और ध्यान करना! यह बहुत, बहुत अधिक प्रचलित धारणा है। मैं कठोर होना नहीं चाहती, परंतु जो लोग ध्यान करनेकी अपनी क्षमताके विषयमें गर्व करते हैं उनमेंसे, मैं नहीं समझती कि अधिकांश व्यक्ति एक घंटेमें एक मिनट भी ध्यान करते हैं। जो लोग सचमुच ध्यान करते हैं वे गर्व नहीं करते; उनके लिये यह एक बिलकुल स्वाभाविक चीज होती है। जब यह एक स्वाभाविक चीज बन जाती है तो फिर उसमें गौरव अनुभव करनेका कुछ नहीं रहता, तुम अपने-आपसे कह सकते हो कि तुम प्रगति कर रहे हो। जो लोग इस विषयमें बहुत बातें करते हैं और समझते हैं कि यह चीज उन्हें बाकी मनुष्योंके मुकाबले एक प्रकारका बड़प्पन प्रदान करती है, उनके विषयमें तुम निश्चित रूपसे यह मान सकते हो कि वे अपना अधिकांश समय पूर्ण जड़ताकी स्थितिमें बिताते हैं।

* *

"अपने आत्मविकासकी सच्ची अवस्था और सच्चा मोड़ कैसे पाया जा सकता है ?"

कैसे पाया जा सकता है ? खोजो। तुम्हें इसकी इच्छा करनी चाहिये, आग्रहके साथ, बार-बार। वही सबसे महत्त्वपूर्ण बात होनी चाहिये।

जब मनुष्य अपने अंतरात्माको खोजनेका, उसके साथ युक्त होनेका, उसे ही अपने जीवनका शासन करने देनेका आवश्यक आंतरिक प्रयास करता है तो बहुत बार जो घटित होता है वह एक प्रकारका वशीभूत करनेवाला आविष्कारका चमत्कार होता है और प्रथम सहज-वृत्ति यह कहनेकी होती है कि "जिस चीजकी मुझे जरूरत है वह अब मुझे मिल गयी है, मैंने अनंत-असीम आनंद प्राप्त कर लिया है और अब मुझे अन्य किसी चीजमें संलग्न रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं।" बल्कि यही चीज लगभग उन सब लोगोंके विषयमें घटित हुई है जिन्होंने यह खोज की है, और कुछ लोग तो ऐसे भी हैं जिन्होंने इस अनुभवको उपलब्धिका एकदम मूलतत्त्व ही बना दिया और कहा, "इस खोजके बाद सब कुछ हो गया, अब और कुछ करनेके लिये बाकी नहीं है, तुम लक्ष्यपर, पथके अंतमें पहुंच गये हो।"

निदान, तुम्हें और आगे जानेके लिये एक महान् साहसकी आवश्यकता होती है, जिस अंतरात्माको मनुष्य ढूंढ़ निकालता है उसे एक ऐसा निःशंक योद्धा अवश्य होना चाहिये जो कभी अपने निजी आंतरिक हर्षसे संतुष्ट न होता हो, दूसरोंको दुःखी देखकर इस भावनाके द्वारा अपनेको सान्त्वना न देता हो कि शीघ्र हो या देरसे, सभी यहां पहुंचेंगे और जो प्रयास उसने किया है उसे दूसरोंको भी अवश्य करना होगा। फिर दूसरे कुछ लोग ऐसे होते हैं जो यह कहकर अपनेको सांत्वना देते हैं कि आंतरिक ज्ञानकी इस स्थितिसे, महान् परोपकार-वृत्ति तथा गंभीर दया-भावके साथ, दूसरोंको भी यहांतक पहुंचनेमें सहायता कर सकता हूं और जब प्रत्येक व्यक्ति यहां पहुंच

जायगा, तब जगत्‌का अंत हो जायगा और यह उन लोगोंके लिये अच्छा ही है जो तकलीफ उठाना पसंद नहीं करते।

परंतु.... एक 'परंतु' है, क्या तुम्हें इस बातका पूरा विश्वास है कि जब परमपुरुष परमात्माने अपनेको अभिव्यक्त किया था तो उनका उद्देश्य और अभिप्राय ऐसा ही था?

यह सारी सृष्टि, यह समूची वैश्व अभिव्यक्ति अपनी अच्छी-से-अच्छी अवस्थामें एक बहुत बुरा परिहास प्रतीत होती है यदि इसे वहीं पहुंचना हो। यदि इसमेंसे बाहर निकल आना ही उद्देश्य हो तो फिर यह आरंभ ही क्यों हुई? भला इतना अधिक संघर्ष करने, इतना अधिक दुःख सहनेका क्या उपयोग है, ऐसी एक चीज उत्पन्न करनेंसे क्या लाभ जो कम-से-कम अपने बाहरी स्वरूपमें इतनी अधिक विलक्षण और दुःखदायी है, यदि यह केवल यही सिखानेके लिये हो कि इससे बाहर कैसे निकला जा सकता है? — कहीं अच्छा तो यही होता कि यह सृष्टि बिलकुल आरंभ ही न हुई होती!

परंतु तुम यदि वस्तुओंके तलदेशमें पैठ जाओ, यदि, न केवल सब प्रकारकी स्वार्थपरतासे बल्कि स्वयं अहंसे भी मुक्त होकर अपने-आपको इस प्रकार संपूर्ण रूपसे, बिना कुछ बचाये, इतनी पूर्णताके साथ, इतनी निःसंगताके साथ उत्सर्ग कर दो कि तुम परमप्रभुके परमोद्देश्य-को जाननेमें समर्थ हो सको तो तुम देखोगे कि यह सृष्टि कोई बुरा परिहास नहीं है, कोई ऐसा घुमावदार पथ नहीं है जिससे अंतमें, कुछ-कुछ क्षत-विक्षत होकर, फिर आरंभ-बिंदुपर ही वापस आ जाया जाय। बल्कि, इसके एकदम विपरीत, यह इसलिये है कि समूची सृष्टि सत्ताका आनंद, सत्ताका सौंदर्य, सत्ताकी महानता, महज्जीवनकी भव्यता, और इस आनंद, सौंदर्य और भव्यताकी नित्य-वर्द्धनशील, शाश्वत वृद्धिको अनुभव करना सीख सके। ऐसी स्थितिमें प्रत्येक चीजका एक अर्थ हो जाता है, फिर संघर्ष करने और कष्ट भोग करनेके लिये अब कोई पछतावा नहीं होता, अब केवल रह जाता है

दिव्य लक्ष्यको संसिद्ध करनेका उत्साह और तुम अपने लक्ष्य और अपनी विजयकी निश्चयताके साथ सिद्धिकी ओर आगे दौड़ पड़ते हो।

इसे जाननेके लिये तुम्हें स्वार्थपर, अहंकारी होना बंद करना होगा, ऐसी पृथक् सत्ता होना बंद करना होगा जो स्वयं अपने ही चारों ओर चक्कर काटती है और परम मूलस्रोतसे अपनेको अलग काट देती है। बस, यही तुम्हें करना है: अहंसे मुक्त हो जाओ और फिर तुम सच्चे लक्ष्यको जान जाओगे और यही है एकमात्र पथ।

अहंसे छुटकारा पाओ, उसे निरर्थक कपड़ेकी तरह झड़ जाने दो।

इसके लिये जो प्रयास मनुष्यको करना पड़ता है उसके अनुकूल ही उसका परिणाम होता है। और तुम इस पथपर एकदम अकेले नहीं हो, यदि तुम्हें विश्वास हो तो तुम्हें सहायता मिलती है।

यदि तुम्हें भागवत कृपाके साथ महज एक क्षणके लिये भी संपर्क प्राप्त हो जाय — उस अद्‌भुत कृपाके साथ जो तुम्हें आगे ले जाती है, तुम्हें दौड़ाती है, तुम्हें यह याद भी नहीं रहने देती कि तुम्हें दौड़ना है, — यदि उसके साथ तुम्हारा केवल एक सेकंडके लिये भी संपर्क हो जाय तो तुम न भूलनेका प्रयास कर सकते हो। और एक बच्चेकी निश्छलताके साथ, एक बच्चेकी सरलताके साथ, जिसके लिय कोई जटिलता नहीं होती, तुम अपने-आपको इस कृपाशक्तिके हाथोंमें सौंप देते हो और उसे अपना कार्य करने देते हो।

आवश्यकता इस बातकी है कि जो कुछ विरोध करता है उसकी बात न सुनी जाय, जो कुछ खंडन करता है उसपर विश्वास न किया जाय, बल्कि विश्वास बनाये रखा जाय, सच्चा विश्वास, ऐसा विश्वास बनाये रखा जाय जो तुम्हें अपने-आपको बिना हिसाब लगाये, बिना मोल-तोल किये दे देनेकी क्षमता प्रदान करता है। विश्वास रखो! कहो, "मेरे लिये यह करो, मैं तुम्हें तुम्हारा काम करनेके लिये छोड़े दे रहा हूं।"

यही सबसे उत्तम उपाय है।

यह पथ कठिन क्यों है ?

श्रीअरविंद लिखते हैं : "यह मार्ग अधिकांश योग-मार्गोंसे कहीं अधिक विशाल और दुस्तर है, इसमें तब-तक मनुष्यको प्रवेश नहीं करना चाहिये जबतक कि उसे यह विश्वास न हो जाय कि इसके लिये उसके चैत्य पुरुषमें पुकार है और अंतिम मंजिलतक चलते रहनेके लिये वह तैयार हो गया है।"

ऐसा क्यों ?

हो सकता है कि व्यक्तिमें बहुत अधिक सदिच्छा हो, उसका जीवन किसी दिव्य सिद्धिकी ओर मुड़ गया हो, उसमें एक प्रकारके आत्मनिवेदनका भाव हो जो कि भागवत कर्मके लिये कम या अधिक छिछला हो; किंतु इस चीजमें और योग करनेमें बहुत अंतर है।

श्रीअरविंद-योगकी साधना करनेका अर्थ होता है सर्वांगीण रूपांतरकी चाह रखना। जीवनमें एकमात्र वही लक्ष्य रखना ताकि उसके अतिरिक्त और कुछ भी न रहे।

जब तुम कहते हो, "मैं योग करना चाहता हूं", तो तुम्हें जानना चाहिये कि तुमने किस बातका निर्णय किया है। जो लोग मेरे पास आते हैं और इस मार्गमें प्रवेश करना चाहते हैं उनमेंसे जिनके बारेमें मैं पूर्णतः निश्चित रहती हूं, क्योंकि उनकी नियतिमें लिखा हुआ होता है कि वे उसीके लिये आये हैं, उन्हें छोड़कर बाकी सबको मैं सदा यह कहा करती हूं : "ठीकसे सोच लो, पूरी तरह निःसंदिग्ध हो जाओ कि यही तुम चाहते हो और तुम्हारे अंदर यह विश्वास हो गया है कि इसी उद्देश्यसे तुम पृथ्वीपर आये हो।"

क्योंकि यह मार्ग सहज नहीं है। इसके लिये समयकी आवश्यकता है, धैर्यकी आवश्यकता है और बहुत अधिक सहनशीलता, अध्यवसाय, साहस और अथक सदिच्छाकी आवश्यकता है। यदि

तुम्हें यह अनुभव होता है कि इन गुणोंको पानेकी क्षमता तुममें है तो पथपर चल पड़ो। किंतु जब एक बार तुम चल पड़े, तब सब समाप्त हो गया, फिर तुम्हें कभी पीछे नहीं हटना है, अंततक चलते ही जाना है। यही कारण है कि क्या करने जा रहे हो इसे भली-भांति जानकर ही निश्चय करना चाहिये। जैसे ही तुम मार्गपर पग रखते हो तुम्हारी अंदरकी प्रत्येक चीज बदल जाती है। बाहरमें परिस्थितियां वैसी ही रहती हैं जैसी कि औरोंकी होती हैं, किंतु अंदरमें बहुत अंतर पड़ जाता है,: एक ऐसी चेतना आ जाती है जो निरंतर सक्रिय रहकर तुम्हारी स्थितिको सुधारती रहती है, तुम्हारी प्रगतिको रोकनेवाली या बंद कर देनेवाली बाधाओंको प्रकाशमें लाती रहती है, कुछ ऐसा करती रहती है जिससे मानो तुम्हारी नाक तुम्हारी अपनी ही भूल और अंधतासे टकराया करती है। इस चेतनामें एक प्रकारकी परिपूर्णता होती है जो तुम्हें मार्गसे विचलित नहीं होने देती।

किंतु ऐसा केवल उन्हीं लोगोंके लिये होता है जिन्होंने योग करने-का निश्चय कर लिया है।

औरोंके लिये यह चेतना कार्य करती है एक ज्योति, एक ज्ञान, एक संरक्षण, प्रगतिकी एक शक्तिके रूपमें ताकि वे लोग अपनी क्षम-ताओंके चरम बिंदुतक पहुंच सकें, अपने चुनावमें पूर्णतः स्वतंत्र रहते हुए यथासंभव अधिक-से-अधिक अनुकूल वातावरणमें जितना अधिक संभव हो उतना विकसित हो सकें।

मेरे बच्चो! तुम सब जो यहां हो, असामान्य स्वतंत्रताके अंदर जीवन बिता रहे हो। बाहरसे तो कुछ मामूलीसे बंधन हैं, क्योंकि तुम लोगोंकी संख्या अधिक है और सारी पृथ्वी तुम्हारे अधीन नहीं है, कुछ हदतक तुम्हें किसी अनुशासनके अधीन रहना ही होगा ताकि अत्यधिक विश्रृंखलता न उत्पन्न हो जाय। किंतु अपनी भीतरी सत्ता-में तुम अद्‌भुत स्वतंत्रताका उपभोग कर रहे हो।

यहां कोई सामाजिक या नैतिक या बौद्धिक दवाव नहीं है, यहांतक कि कोई सिद्धांत भी नहीं है, बस, एक ज्योति विद्यमान है। यदि तुम इससे लाभ उठाना चाहो तो तुम्हें लाभ होता है, यदि तुम इससे लाभ उठाना न चाहो तो इसके लिये भी तुम स्वतंत्र हो।

किंतु जिस दिन चुनाव कर लेते हो और पूरी सच्चाईसे कर लेते हो, जब तुम यह अनुभव कर लेते हो कि तुम्हारे अंदर मौलिक निश्चय हो चुका है, तब बात दूसरी हो जाती है: तब बस वह ज्योति होती है और चलनेके लिये मार्ग — एकदम सीधा। फिर उससे विमुख होनेकी कोई गुंजायश नहीं रहती।

योग कोई हंसी-मजाक नहीं है; जब तुम इसे वरण करते हो तो तुम्हें जानना चाहिये कि तुम क्या कर रहे हो। एक बार जब तुमने इसे वरण कर लिया तो फिर तुम्हें इसपर डटे रहना होगा। तुम्हें डगमगानेका कोई अधिकार नहीं, तुम्हें अंततक चलना ही होगा।

जो लोग योगसाधना नहीं करते उनसे मैं केवल इतना ही चाहती हूं कि उनमें अपनी ओरसे उत्तम-से-उत्तम करनेका संकल्प हो, प्रगति करनेका प्रयत्न हो और जीवनमें सामान्य मानवसे कुछ अधिक श्रेष्ठ बननेकी चाह हो। तुम असाधारण प्रकाश, चेतना, सामंजस्य और सद्भावनासे परिपूर्ण परिस्थितियोंमें बड़े हुए हो, विकसित हुए हो, इन परिस्थितियोंके प्रत्युत्तरमें तुम इस दुनियामें इसी प्रकाश, इसी सामंजस्य, इसी सद्भावनाकी अभिव्यक्ति बनो।'

इस योगको करना, इस रूपांतर-योगको करना जो कि सब चीजोंसे अधिक दुष्कर है, केवल तभी संभव है जब कि तुम यह अनुभव करो कि तुम इसीके लिये यहां, यानी इस पृथ्वीपर आये हो, तुम्हारे लिये और कोई भी चीज करने लायक नहीं है और एकमात्र यही तुम्हारे अस्तित्वका हेतु है। इसके लिये तुम्हें यदि कठिन परिश्रम करना पड़े, कष्ट सहना पड़े, संघर्ष करना पड़े, तो भी कोई बात नहीं, क्योंकि तुम उस सिद्धिको चाहते हो, और किसी चीजको नहीं।

एक बार जब तुमने योगके मार्गपर अपना पग रख दिया है तो फिर तुम्हारा निश्चय फौलादकी तरह होना चाहिये और चाहे जो कुछ भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े तुम्हें सीधे लक्ष्यकी ओर बढ़ते जाना चाहिये।

"जब कोई रास्तेपर ठहर जाता है, पीछे हट जाता है तो क्या वह अपने सारे जीवन वहीं बना रहता है?"

इसमें कई तरहकी बातें होती हैं और यह निर्भर करता है पीछे हटनेके स्वरूपके ऊपर। अगर यह मामूली ढंगका पीछे हटना हो, एक मामूली तरहसे रुकना हो तो तुम फिर रवाना हो सकते हो, पर पहलेसे दसगुनी अधिक कठिनाइयोंका मुकाबला करना होगा।

ऐसा क्यों?

क्यों? क्योंकि यह बात ऐसी ही है; क्योंकि तुमने अपनी ढिलाई और कमजोरीके कारण अपने अंदर बाधाओंको एकत्र कर लिया है।

जो कठिनाइयां तुम्हारे सामने आती हैं और तुम्हें जीतनी होती हैं वे सब आध्यात्मिक परीक्षाएं होती हैं जिन्हें तुम्हें पास करना ही होगा। यदि तुम अपनी परीक्षामें असफल हो जाओ तो दूसरी परीक्षा बहुत अधिक कठिन हो जायेगी। यह एक सामान्य गुह्य विधान है और कोई मनुष्य इससे बच नहीं सकता।

यह भी याद रखो कि वर्त्तमान परिस्थितियोंमें तुम्हें पहलेसे कुछ पता नहीं होता और यह बात भी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेको अधिक कठिन बना देती है। पुराने युगोंमें साधकोंसे कह दिया जाता था: "अब तुम तैयार हो जाओ, अब तुम्हें भीषण परीक्षाओं-मेंसे गुजरना होगा।" कहते हैं, एक सावधान मनुष्य दसके बराबर

होता है। उसे पता था कि यह एक परीक्षा है और इसने उसे बहुत आसान बना दिया।

वर्त्तमान युगमें स्वयं जीवन ही, प्रत्येक दिनकी परिस्थितियां ही हमारे लिये वे परीक्षाएं हैं जिन्हें हमें पास करना है।

कुछ लोग सहज रूपमें यह अनुभव करते हैं कि वे एक ऐसे निर्णयके सामने उपस्थित हैं जिसे उन्हें लेना है, एक विशेष प्रयासके सम्मुख उपस्थित हैं जिसे करना है। वे अपने अंदर यह प्रयास करते हैं और कार्यवाही करते हैं। तब उन्हें दूसरी परीक्षाका सामना करनेके लिये बहुत बड़ी शक्ति प्राप्त हो जाती है।

दूसरी ओर, यदि तुम अंधे, अज्ञ, मूढ़ हो या असद् इच्छावाले हो, और जो परीक्षा सामने आती है उसे स्वीकार करनेके बदले अस्वीकार करते और विद्रोह करते हो तो इसका अर्थ है कि अपनी परीक्षामें असफल हो गये हो। दूसरे अवसरपर तुम्हें बाधाको पार करनेके लिये महज एक प्रयास ही नहीं करना होगा, बल्कि तुमने जो अपना नुकसान किया है उसे भी पूरा करना होगा और स्वभावतः ही यह बहुत अधिक कठिन होगा।

अतएव, सबसे उत्तम है चाहे जो भी हो पर निरंतर आगे बढ़ते जाना और यह प्रयास करना कि रास्तेमें बार-बार रुकना न पड़े। क्योंकि एक बार रुककर फिर आरंभ करनेकी अपेक्षा निरंतर बढ़ते रहना, यदि वह कठिन भी हो तो, कहीं अधिक आसान है।

जब तुम अपने आत्मविकासके किसी संगीन क्षणमें आ उपस्थित होते हो और जब तुम्हारे लिये यह एकदम आवश्यक हो जाता है कि आगे बढ़नेके लिये बाधापर विजय पायी जाय तो सर्वदा ही दो संभावनाएं तुम्हारे सामने रहती हैं: बस, पग आगे बढ़ा दो और एक महान् प्रगति कर लो; अन्यथा, तुम प्रयासको बस छोड़ देते हो, और फिर वहां रुकनेसे भी कोई बड़ी चीज, यहांतक कि पीछे हटनेसे भी कोई बड़ी चीज घटित हो जाती है; यह पर्वत-गह्वरमें एक

भयानक पतन भी हो सकता है, और ऐसे पतन भी हैं जिनमेंसे मनुष्य कभी ऊपर नहीं उठ सकता। ऐसी अवस्थामें एक जीवन वर्बाद हो जाता है।

फिर भी, ऐसी चरम अवस्थाओंमें भी, यदि उस लड़खड़ाये हुए और पतित अंगके सिवाय तुम्हारी सत्ताके किसी भागमें एक ज्वलंत शिखा हो और चाहे जो भी दुःख-कष्ट आये, जितना भी प्रयास करना पड़े, चाहे जो भी त्याग करना पड़े, जो कुछ तुमने किया है उसको सुधारनेके लिये, गिरि-गह्वरमेंसे फिर ऊपर उठनेके लिये और फिरसे रास्ता खोज निकालनेके लिये तुम सब कुछ करनेको तैयार होओ तो तुम उसे कर सकते हो। वह लौ भागवत कृपाको पुकार लानेमें समर्थ होती है और कृपाशक्तिकी सहायता होनेपर कोई कार्य असंभव नहीं होता।

परंतु लौको वास्तवमें शक्तिशाली होना चाहिये, क्योंकि जब मनुष्य नीचे गर्त्तके तलमें पड़ा होता है तो उससे वाहर निकल आना आसान नहीं होता।

यदि तुम पथका त्याग कर दो तो उसे फिर पाना भी कठिन होता है। वड़ी विचित्र वात यह है कि यदि तुम इसे छोड़ देते हो तो इसे खो भी देते हो। हर देशमें इस आशयकी कथाएं प्रचलित हैं, उन लोगोंकी कथाएं जिन्होंने पथका त्याग कर दिया और फिर उसे पानेकी कोशिश की और उसे कभी नहीं पाया। ऐसा लगता है मानो वह कहीं विलीन हो गया है।

जव तुम मार्गपर आते हो तो कभी उसे मत छोड़ो। उसे ग्रहण करनेसे पहले इतस्ततः करो, तुम जवतक चाहो तवतक इतस्ततः कर सकते हो परंतु जब तुमने मार्गको पकड़ लिया तब सारा मामला खतम; अव तुम कभी उसको मत छोड़ो। क्योंकि उसके परिणाम ऐसे होते हैं जो कई जीवनोंतकमें बने रह सकते हैं। और यह बात अत्यंत गंभीर है।

क्या आध्यात्मिक योग्यता बढ़ायी जा सकती है ?

"यदि किसीमें आध्यात्मिक योग्यता थोड़ी हो तो क्या क्या वह उसे बढ़ा सकता है ?"

मैं नहीं जानती कि ऐसा कहा जा सकता है कि किसीमें कम या अधिक आध्यात्मिक योग्यता है। बात ऐसी नहीं है।

आध्यात्मिक जीवन बितानेके लिये आवश्यकता होती है चेतनाको पलट देनेकी। मनके क्षेत्रमें जो क्षमताएं या संभावनाएं रहती हैं उनसे इसकी तुलना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। तुम किसीके बारेमें यह कह सकते हो कि उसमें मानसिक या प्राणिक या भौतिक योग्यता बहुत नहीं है और उसकी संभावनाएं बहुत सीमित हैं, और ऐसी दशामें पूछा जा सकता है कि उसकी क्षमताओंका विकास करनेके, यानी नयी क्षमताओंको प्राप्त करनेके क्या साधन हैं, जो कि काफी कठिन चीज होती है। किन्तु आध्यात्मिक जीवन बितानेका अर्थ होता है अपने अंदरके किसी अन्य लोकके प्रति उन्मीलित होना। यह मानो अपनी चेतनाको उलट देना होता है। मनुष्यकी सामान्य चेतना, यहांतक कि अधिक-से-अधिक विकसित व्यक्तियोंकी चेतना भी, महान् प्रतिभा और उपलब्धिवाले व्यक्तियोंकी चेतना भी, बहिर्मुखी गतिवाली होती है। सारी शक्तियां बाहरकी ओर चालित होती हैं, सारी चेतना बाहरकी ओर फैली रहती है, और यदि कोई चीज अंदरकी ओर मुड़ी होती है तो वह बहुत थोड़ी-सी होती है, बहुत विरल और आंशिक होती है। और इतना भी तब होता है जब कि बहुत विशिष्ट परिस्थितियोंका, प्रबल आघातोंका दबाव पड़ता है, ऐसे आघातोंका दबाव पड़ता है जिन्हें जीवन इस बहिर्मुखी गतिको थोड़ा पलट देनेकी इच्छासे प्रदान करता है।

किंतु जिन लोगोंने आध्यात्मिक जीवन बिताया है उन सबको

ऐसा अनुभव हुआ होता है कि अकस्मात् उनकी सत्ताके अंदर कोई चीज उलट गयी है, हठात् और कभी-कभी पूरी-की-पूरी अंदरकी ओर मुड़ गयी है, कभी कभी अंदरकी ओर और ऊपरकी ओर भी और कभी-कभी अंदरसे ऊपरकी ओर मुड़ गयी है; और यह 'ऊपरकी ओर' कोई बाहरी चीज नहीं होती, वह आंतरिक और गहरी होती है, भौतिक रूपमें जिन ऊंचाइयोंकी कल्पना की जा सकती है उनसे वह भिन्न होती है।

शब्दशः कोई चीज घूम गयी होती है। एक निर्णयात्मक अनुभूति हो जाती है, जीवनके प्रति जो दृष्टिकोण रहता है, जीवनको देखनेका जो तरीका होता है, जीवनके प्रति जो भाव रहता है वह अकस्मात् बदल जाता है और कुछ प्रसंगोंमें बिल्कुल निश्चित और अटल रूपमें बदल जाता है।

और एक बार जब तुम आध्यात्मिक जीवन और सत्यकी ओर घूम जाते हो तो तुम स्पर्श करते हो असीमका, शाश्वतताका और तब कम या अधिक योग्यता या संभावनाका प्रश्न नहीं रह जाता। यह कहना कि किसीमें आध्यात्मिक जीवन बितानेकी कम या अधिक योग्यता है, आध्यात्मिक जीवनका मानसिक निरूपण होता है, किंतु यह बिल्कुल ही उपयुक्त कथन नहीं होता। बस, इतना ही कहा जा सकता है कि संपूर्णतया और निश्चिततया चेतनाके उलट जानेके लिये कोई कम या अधिक तैयार हो चुका है।

वास्तवमें, जो चीज मापी जा सकती है वह है सामान्य क्रियाशीलताओंसे अलग हटने और आध्यात्मिक जीवनकी खोजमें चल पड़नेकी मनकी क्षमता। किंतु जबतक तुम मनके क्षेत्रमें रहते हो, चेतनाकी इस अवस्थामें, चेतनाके इस स्तरपर रहते हो, तबतक तुम दूसरोंके लिये, वह चाहे जनसाधारणके जीवनके लिये हो, चाहे विशेष व्यक्तियोंके लिये, बहुत नहीं कर सकते, क्योंकि स्वयं तुम्हारे अंदर वह निश्चयता नहीं होती, तुम्हें निश्चयात्मक अनुभूति नहीं हुई होती,

तुम्हारी चेतना आध्यात्मिक जगत्‌में नहीं स्थापित हुई होती और तुम्हारे सारे प्रयत्नोंका अंत मनके क्रिया-कलापोंमें होता है। जिनका अच्छा पक्ष भी होता है और बुरा पक्ष भी, पर जिनमें बहुत शक्ति नहीं होती; जो कुछ भी हो, उनमें आध्यात्मिक संक्रामक शक्ति नहीं होती और यथार्थमें यही शक्ति प्रभावशाली होती है।

जिस एक चीजका सचमुच प्रभाव पड़ता है वह है तुम जिस चेतनामें निवास करते हो उसे दूसरोंके अंदर संचारित करनेकी संभावना। किंतु इस शक्तिका तुम आविष्कार नहीं कर सकते, इसकी नकल नहीं कर सकते और न इसे प्राप्त कर लेनेका दिखावा कर सकते हो। यह शक्ति तो स्वतः ही केवल उस समय आती है जब तुम उस स्थितिमें प्रतिष्ठित हो जाते हो, जब तुम उसमें रहनेका प्रयास नहीं करते बल्कि उसके अंदर निवास करते होते हो, जब कि तुम उसके अंदर विद्यमान रहते हो। और यही कारण है कि जो लोग वास्तवमें आध्यात्मिक जीवन विताते हैं उन्हें धोखा नहीं दिया जा सकता।

आध्यात्मिक जीवनकी नकल उन लोगोंको छल सकती है जो अभी मनके क्षेत्रमें रहते हैं, किंतु जिन लोगोंने अपने अंतरमें चेतनाके इस विपर्ययको उपलब्ध कर लिया है, बाह्य सत्ताके साथ एकदम भिन्न संबंध स्थापित कर लिया है, वे न तो छले जा सकते हैं और न वे स्वयंको ही छल सकते हैं।

ऐसे लोगोंको ही मन नहीं समझ पाता। जबतक तुम मनकी चेतनामें रहते हो, चाहे वह ऊंची-से-ऊंची क्यों न हो, और आध्यात्मिक जीवनको बाहरसे देखते हो, तबतक तुम अपने मनकी वृत्तियोंके सहारे खोजने, गल्तियां करने, सुधारने, आगे बढ़ने, और फिर खोजनेकी इस आदतके द्वारा देखते-विचारते हो और तुम समझते हो कि जो लोग आध्यात्मिक जीवनमें हैं उनमें भी यही क्षमता विद्यमान है, किंतु यह एक बहुत बड़ी भूल है।

जब सत्ताके अंदर उलट-पुलट हो जाती है तो यह सब समाप्त हो जाता है। फिर तुम खोजते नहीं, देखते हो। फिर तुम अनुमान नहीं करते, तुम जान जाते हो। फिर तुम अंधकारमें टटोलते नहीं, सीधे लक्ष्यकी ओर अग्रसर होते हो। और जब तुम कुछ आगे बढ़ जाते हो — थोड़ा-सा ही आगे — तब तुम इस परम सत्यको जान जाते हो, अनुभव करते हो और उसके अनुसार जीवन बिताने लगते हो कि एकमात्र परात्पर सत्य ही कार्य करता है, एकमात्र परम प्रभु ही मानव-प्राणियोंके द्वारा इच्छा करते हैं, जानते हैं और कार्य करते हैं। तब भला भूल-भ्रांतियां कैसे संभव हो सकती हैं? प्रभु जो कुछ भी करते हैं वह इसलिये करते हैं कि वही उनकी इच्छा होती है। वह कोई कार्य इसलिये करते हैं कि उसे करनेकी वह इच्छा करते हैं।

हमारी भ्रांतिमयी दृष्टिके लिये ये कार्य शायद समझमें आने योग्य नहीं होते, किंतु उनका एक अर्थ होता है और लक्ष्य होता है और वे उस ओर ले जाते हैं जहां उन्हें ले जाना चाहिये।

यदि तुम दूसरोंकी और दुनियाकी सहायता सच्चाईसे करना चाहते हो तो तुम्हारे लिये सबसे अच्छा यह होगा कि तुम स्वयं वैसा बनो जैसा कि तुम चाहते हो कि दूसरे बनें — मात्र एक उदाहरणके रूपमें नहीं, वरन् इसलिये कि तुम शक्तिका एक ऐसा जाज्वल्यमान केंद्र बन जाओ जो महज अपने अस्तित्वमात्रसे ही बाकी सारी दुनियाको रूपांतरित होनेके लिये बाध्य करे।

योगका प्रथम प्रभाव

"....योगका प्रथम प्रभाव होता है मानसिक संयमका दूर हो जाना; और जो बुभुक्षाएं सोयी पड़ी होती हैं वे एकाएक स्वतंत्र हो जाती हैं और समस्त सत्तापर आक्रमण करनेके लिये दौड़ पड़ती हैं।.....

"उस समय तुम्हारा कर्तव्य यह है कि तुम इन चीजों (आवेगों, विशेषकर काम-वासनाके आवेगों) को अपनेसे दूर रखो, उनसे अपने-आपको विच्छिन्न कर लो, उन्हें यथासंभव कम-से-कम महत्त्व दो और यदि तुम्हें उनके विषयमें सोचना भी पड़े तो अनासक्त और उदासीन बने रहो।"

(मातृवाणी — वार्तालाप)

कठिनाईको दबाकर उसपर बैठ जानेसे यह बहुत अधिक कठिन है। कठिनाईसे अलग हटकर खड़ा हो जाना, उसे ऐसी चीजकी तरह देखना जिससे तुम्हारा कोई मतलव न हो, जिसमें तुम्हें कोई दिलचस्पी न हो, जिससे तुम्हारा कोई संबंध न हो, जिसका संबंध संसारसे हो पर तुमसे न हो, यह बहुत अधिक कठिन है — परंतु यही चीज है जिसे करनेपर तुम सफल हो सकते हो। यह चीज एक प्रकारकी आत्माकी मुक्तिकी, अपनी आंतर सत्तामें विश्वासकी मांग करती है — तुम्हें यह विश्वास होना चाहिये कि यदि तुम यथार्थ मनोभाव ग्रहण करो तो तुम्हारे साथ जो कुछ घटित होगा वह सबसे उत्तम होगा; परंतु जब तुम्हारे साथ कोई दुःखदायी घटना घटित हो जाय और उससे तुम भयभीत हो उठो तो फिर तुम कुछ नहीं कर सकते। तुम्हें अपने अंदर इस विश्वासको अवश्य बनाये रखना होगा चाहे जो भी कठिनाई, जो भी बाधा क्यों न आये। अधिकांश समय, जब कोई अप्रिय बात घट जाती है तो तुम कहते हो, "क्या यह

और बढ़ेगी; कौनसी और अधिक दुर्घटनाएं घटित होंगी ?" आदि-आदि। परंतु इसके बदले तुम्हें कहना चाहिये, "ये चीजें मेरी नहीं हैं; ये तो अवचेतनाके जगत्‌की चीजें हैं। निस्संदेह, यह तो जानी हुई बात है कि इनके साथ मुझे कुछ भी करना-धरना नहीं है और यदि ये फिरसे मुझे दुबारा पकड़नेके लिये आयें तो मैं इनसे डटकर लड़ूंगा।" स्वभावतः ही तुम उत्तर दोगे कि इसे कहना आसान है पर करना कठिन है। परंतु तुम यदि वास्तवमें पूर्ण विश्वासका भाव ग्रहण करो तो फिर ऐसी कोई कठिनाई नहीं रह जायगी जिसे तुम जीत न सको। दुश्चिंता कठिनाईको और भी बड़ी बना देती है।

स्पष्ट ही यहां एक कठिनाई है; तुम्हारी सचेतन सत्तामें विद्य-मान कोई चीज कठिनाईको नहीं चाहती, सच्चे हृदयसे उसे जीतना चाहती है, पर तुम्हारी चेतनाके अन्य भागोंमें ऐसी असंख्य क्रियाएं होती हैं जिनके विषयमें तुम सचेतन नहीं होते। तुम कहते हो, "मैं उससे मुक्त होना चाहता हूं", परंतु दुर्भाग्यवश इतना कहना पर्याप्त नहीं है कि "मैं चाहता हूं", वहां चेतनाके ऐसे दूसरे भाग होते हैं जो छिपे होते हैं जिससे कि तुम उनके विषयमें व्यग्र न होओ और जब तुम्हारा ध्यान दूसरी ओर मुड़ जाता है तो ये भाग अभि-व्यक्त होनेकी चेष्टा करते हैं। इसी कारण मैं कहती हूं और बार-बार दुहराती हूं कि "पूर्ण रूपसे सच्चे बनो, अपने-आपको धोखा देने-की कोशिश मत करो, यह न कहो कि 'मैं जो कुछ कर सकता हूं वह सब कर चुका हूं।" क्योंकि तुम जो कुछ कर सकते हो "वह सब" यदि वास्तवमें कर डालो तो तुम निश्चय ही सफल होगे। यदि तुममें कोई दोष है और तुम उससे छुटकारा पाना चाहते हो पर वह सर्वदा बना रहता है और तुम यह कहते हो कि "मैं जो कुछ कर सकता हूं वह कर चुका हूं", तो तुम निश्चित रूपसे यह मान सकते हो कि जो कुछ तुम्हें करना चाहिये था वह सब तुमने नहीं किया है। यदि तुमने किया होता तो तुम अवश्य विजयी हुए होते,

क्योंकि जो कठिनाइयां तुम्हारे पास आती हैं वे ठीक-ठीक तुम्हारी शक्तिके अनुपातमें ही आती हैं -- ऐसा कुछ भी घटित नहीं हो सकता जिसका संबंध तुम्हारी चेतनाके साथ नहीं है, और जो कुछ तुम्हारी चेतनासे संबंधित है उसपर विजय पानेकी सामर्थ्य तुममें है। यहां-तक कि जो चीजें और जो सुझाव बाहरसे आते हैं वे भी तुम्हारी चेतनाकी अनुमतिके अनुपातमें ही तुम्हें स्पर्श कर सकते हैं और अपनी चेतनापर प्रभुत्व स्थापित करनेके लिये ही तुम्हारी रचना हुई है। यदि तुम कहते हो कि "मैं जो कुछ कर सकता हूं वह सब कर चुका हूं और फिर भी चीज बनी हुई है, इसलिये मैं अब छोड़ रहा हूं", तो तुम इस विषयमें बिलकुल निस्संदिग्ध हो सकते हो कि तुम्हें जो करना चाहिये था उस सबको तुमने नहीं किया है। जब कोई भूल-भ्रांति ज्यों की त्यों बनी रहती है तो इसका मतलब है कि तुम्हारी सत्तामें कोई चीज छिपी बैठी है, वह एकाएक शैतानकी तरह बक्ससे बाहर निकल आती है और तुम्हारे जीवनकी पतवार हथिया लेती है। अतएव, करनेकी बस एक ही चीज है और वह है जो सब छोटे-छोटे अंधकारपूर्ण कोने तुम्हारे अंदर छिपे हैं उनको ढूंढ़ निकालना। यदि तुम ठीक इस अंधकारके ऊपर अपनी सदिच्छाकी छोटी-सी चिनगारी डाल दो तो वह हार मान लेगा और विलीन हो जायगा, और जो चीज तुम्हें असंभव प्रतीत होती थी वह केवल संभव और सुसाध्य ही नहीं बन जायगी बल्कि ऐसी चीज बन जायगी जो संपन्न हो चुकी है। इस तरह तुम एक मिनटमें उस कठिनाईको दूर भगा सकते हो जो अन्यथा तुम्हें वर्षों हैरान-परेशान कर सकती थी। मैं इस विषयमें तुम्हें पूरा आश्वासन प्रदान करती हूं। यह बात केवल एक चीजपर निर्भर है और वह यह है कि तुम्हें सचमुचमें, सच्चे हृदयसे उससे छुटकारा पानेकी इच्छा करनी चाहिये। और प्रत्येक चीजके लिये बस यही बात है, शारीरिक बीमारियोंसे लेकर बड़ी-से-बड़ी मानसिक कठिनाइयोंतकके लिये।

चेतनाका एक भाग कहता है, "मैं नहीं चाहता", पर उसके पीछे ऐसी चीजोंका एक अंबार छिपा रहता है जो कुछ नहीं कहतीं, अपनेको सामने नहीं प्रकट करतीं और बस यह चाहती हैं कि चीजें जैसी हैं वैसी ही बनी रहें — साधारणतया किसी अज्ञानपूर्ण कारणसे। वे यह नहीं विश्वास करतीं कि कठिनाईसे मुक्त होना आवश्यक है, वे विश्वास करती हैं कि प्रत्येक चीज सर्वश्रेष्ठ संसारकी सर्वोत्तम वस्तु होती है। जिस महिलाके साथ मेरा यह वार्त्तालाप हुआ था वह कहा करती थी, "जब हम परिवर्तनकी इच्छा करती हैं तो फिर उसके साथ-ही-साथ कठिनाई आरंभ हो जाती है।" फ्रांसके एक बहुत बड़े लेखक इस बातको बार-बार दुहराते रहे और इसीके आधारपर उन्होंने अपना परम प्रिय सिद्धांत गढ़ लिया था, "जब तुम अपनेको पूर्ण बनानेकी इच्छा करते हो तो दुःख-दैन्य आरंभ हो जाता है और यदि तुम अपनेको पूर्ण बनानेकी इच्छा न करो तो तुम्हें दुख-कष्ट नहीं होगा।" मैं तुम्हें बता दूं कि यह बात बिलकुल गलत है, परंतु तुम्हारे अंदर ठीक वैसी ही चीजें होती हैं जो चाहती हैं कि उन्हें एकदम अकेली छोड़ दिया जाय, किसी भी तरह परेशान न किया जाय : वे मानो कहती हैं : "ओह ! कितना कष्टकर है यह, हमें तो अकेली ही छोड़ दो।"

भगवान् : कैसे जानें और पावें ?

"भगवान्‌को कैसे समझा जा सकता है ?"

मेरे बच्चे, भगवान् बनकर; उनके साथ तादात्म्य स्थापित करके; बस, यही एकमात्र मार्ग है।

श्रीअरविंद कहते हैं, "यदि हम भगवान्‌को अपने अंदर वहन

नहीं करते होते तो हम कभी उन्हें समझ पानेके योग्य न होते।" चूंकि हमारी सत्ताके ठीक सारतत्त्व वही हैं, इसलिये हम भगवान् बन जानेमें समर्थ होते हैं और इसलिये उन्हें समझ पाते हैं, अन्यथा यह बिलकुल असंभव होता।

* *

"हम भगवान्को अपने अंदर कैसे पावें?"

ठीक यही बात मैंने अभी कही है।

सबसे पहले, तुम उनकी खोज करना आरंभ करो और इस खोजको ही अपने जीवनकी सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु मानो। फिर इसके लिये तुम्हारा संकल्प स्थायी होना चाहिये, तुम्हारी अभीप्सा अटल होनी चाहिये, तुम्हारी लगन अटूट होनी चाहिये, और एक-मात्र इसी चीजकी तुम्हें चाह होनी चाहिये। तब तुम उन्हें पा लोगे।

इस संबंधमें यदि अपने जीवनमें तुम केवल पांच मिनट तो सोचो और बाकी ५५ मिनट और चीजोंमें संलग्न रहो तो स्वभावतः ही सफलताकी कोई आशा नहीं रहेगी। किसी भी दशामें, इस कार्यके लिये अनेक जीवनोंकी आवश्यकता होगी। तुम्हारी यह खोज कोई मनबहलावकी चीज नहीं होनी चाहिये, बल्कि इसे होना चाहिये तुम्हारी सत्ताका एकमात्र कार्य, तुम्हारे अस्तित्वका यथार्थ कारण।

* *

"क्या कोई ऐसा अनुभव है जो यह साबित करता हो कि हम भगवान्की उपस्थितिमें निवास कर रहे हैं?"

जब तुम भगवान्की उपस्थितिमें निवास करते हो तो फिर तुम कोई प्रश्न नहीं करते। यह अपनी निश्चयताको स्वयं अपने अंदर वहन करता है — तुम अनुभव करते हो कि तुम जानते हो और इस विषयमें संदेह करना असंभव हो जाता है। तुम भगवान्की

5

उपस्थितिमें निवास करते हो और यह तुम्हारे लिये एक ध्रुव सत्य होता है। उससे पहलेतक तुम पूछते हो, क्योंकि तुम्हें अनुभव नहीं हुआ है, परंतु तुम्हें जब अनुभव हो जाता है तो उसकी एक प्रामाणिकता होती है जो निर्विवाद होती है। जो व्यक्ति यह कहता है, "मैं समझता हूं कि मैं भगवान्की उपस्थितिमें निवास करता हूं, पर मैं निस्संदिग्ध नहीं हूं", उसे सच्चा अनुभव नहीं प्राप्त हुआ है, क्योंकि ज्यों ही मनुष्यको इस अनुभवका आंतरिक धक्का प्राप्त होता है, फिर कोई प्रश्न करना संभव नहीं होता। यह प्रश्न उन लोगोंके प्रश्न-जैसा है जो पूछते हैं, "भगवान्की इच्छा क्या है?" जबतक तुम्हें इस इच्छाकी झलक नहीं प्राप्त होती तबतक तुम इसे नहीं जान सकते। मनुष्य निगमन, अनुमान आदिके द्वारा इसकी एक धारणा बना सकता है, पर तुम्हें जब भागवत इच्छाके साथ यथार्थ संपर्क प्राप्त हो जाता है तब फिर उसके विषयमें तर्क नहीं किया जा सकता —तब तुम जानते हो।

कोई गलतफहमी न रहे इसलिये मैं यहां यह जोड़ रही हूं: सभी अनुभवोंका मूल्य केवल उसी अनुपातमें होता है जिस अनुपातमें अनुभव करनेवालेमें सच्चाई होती है। कुछ लोग सच्चे नहीं होते और आश्चर्यजनक अनुभवोंकी रचना कर लेते हैं; उन्हें ऐसा लगता है कि उन्हें ऐसा अनुभव हुआ है। मैं ऐसी बातको एक किनारे रख देती हूं। इसकी चर्चा करनेमें कोई रस नहीं है। परंतु सच्चे लोगोंका जहांतक प्रश्न है, जिन्हें सच्चा अनुभव हुआ है, एक बार जिन्हें भागवत उपस्थितिका अनुभव हो चुका है, उनसे सारा संसार यह कह सकता है कि यह सत्य नहीं है, पर वे जरा भी टस-से-मस नहीं होंगे।

अगर तुम सच्चे नहीं हो तो तुम्हें विलक्षण अनुभव हो सकते हैं पर उनका, न तो तुम्हारे लिये न दूसरोंके लिये, कोई मूल्य होगा। तुम्हें अपने विचारोंपर बहुत अधिक अविश्वास रखना चाहिये,

क्योंकि मन एक विचित्र निर्माता है और यह एकमात्र अपने रचना-कारी कार्यके द्वारा तुम्हें विस्मयकारी अनुभूतियां प्रदान कर सकता है। परंतु ऐसी अनुभूतियोंका कोई मूल्य नहीं होता। अतएव पहलेसे यह न जानना कहीं अधिक अच्छा है कि क्या होने जा रहा है। जिन लोगोंमें सच्चा होनेका महान् संकल्प होता है उनमें भी मन इतना अधिक और इतने अच्छे ढंगसे सृजन करता है कि वह आश्चर्यजनक चित्र तुम्हारे सामने खड़ा कर सकता है अथवा, तुम्हारे विना समझे, महज अपनी रचना-शक्तिकी सहायतासे तुम्हारे लिये एक बड़ा सुन्दर नाटक भी खेल सकता है, और इसका पता पा लेना बहुत कठिन है। इसलिये सच्ची अनुभूति पानेकी एक आवश्यक शर्त्त है: इस मशीनको चुपचाप छोड़ देना; यह जितना कम चले उतना ही अच्छा है और तुम्हारे लिये यह जो कुछ कल्पना करता है उस सबसे सावधान रहो।

*   *

परम तादात्म्यकी ओर तीन पग

जो कुछ तुम्हारे पास है उसे दे डालो, यह आरंभ है।
जो कुछ तुम करते हो उसे दे डालो, यह मार्ग है।
जो कुछ तुम हो उसे दे डालो, यह संसिद्धि है।

*   *

"यह कैसे जाना जाय कि भगवान्की इच्छा क्या है?"

यह चीज जाननेकी नहीं, अनुभव करनेकी चीज है। और इसे अनुभव करनेके लिये तुम्हारी इच्छा इतनी तीव्र होनी चाहिये, इतनी सच्ची होनी चाहिये कि सारा व्यवधान विलीन हो जाय। जबतक तुम्हारे अंदर कोई पसंदगी, कामना, आकर्षण, राग है तबतक ये चीजें सत्यको तुमसे छिपा रखती हैं। अतएव, सबसे पहली चीज जो तुम्हें

करनी है वह यह है कि तुम अपनी चेतनाकी इन सारी गतियोंके स्वामी बनो, उनपर शासन करनेकी कोशिश करो और उन गति-विधियोंको निकाल फेंको जिनका परिवर्तन नहीं हो सकता। यह प्रयत्न तबतक जारी रखो जबतक कि ये गतियां सत्यकी पूर्ण और स्थायी अभिव्यक्ति न बन जायं।

इसके लिये केवल इच्छा करना ही काफी नहीं होता, क्योंकि बहुत बार व्यक्ति इच्छा करना ही भूल जाता है।

इसके लिये आवश्यक है कि तुम्हारी सत्ताके अंदर अखंड अग्नि-शिखाकी भांति एक अभीप्सा जलती रहे और जब-जब तुममें कोई कामना, पसंदगी या आकर्षण हो तब-तब तुम उसे इस अग्निमें झोंक दो। यदि तुम दृढ़तापूर्वक ऐसा करते रहोगे तो देखोगे कि तुम्हारी सामान्य चेतनाके अंदर सच्ची चेतनाकी एक हल्की-सी टिमटिमाती लौ उत्पन्न होने लगी है। शुरू-शुरूमें वह अस्पष्ट होगी; कामनाओं, आकर्षणों, पसंदगियों और लगावोंके समस्त कोलाहलके पीछे बहुत दूर होगी। किंतु उस सच्ची चेतनाको पानेके लिये, जो इतनी शांत, इतनी स्थिर, प्रायः निस्तब्ध-सी होती है, इन सबके पीछे चले जाना होगा।

सच्ची चेतनाके साथ जिनका संपर्क हो गया है वे लोग एक साथ ही सारी संभावनाओंको देख लेते हैं और यदि आवश्यक हो तो वे अत्यंत प्रतिकूल संभावनाओंका भी वरण कर सकते हैं। किंतु बहुत दूर आगे चले जानेके बाद ही वह स्थिति आती है।

"पसंदगियोंको अशक्त, व्यर्थ कर दिया जाय या भुला दिया जाय?"

तुममें कोई पसंदगी होनी ही नहीं चाहिये।

जब मन नीरव हो जाता है, जब वह निर्णय करना छोड़ देता है, अपने तथाकथित ज्ञानको लेकर सामने बढ़ आना छोड़ देता है,

तब व्यक्ति जीवनकी समस्याको सुलझाने योग्य होने लगता है। तुम्हें निर्णय करनेसे बचना चाहिये, क्योंकि मन मात्र कर्मका एक यंत्र है, न कि सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेका यंत्र —– सच्चा ज्ञान तो कहीं दूसरी जगहसे आता है।

यदि तुम निर्णय करना छोड़ दो तो सत्यके अधिकाधिक सही ज्ञानको प्राप्त करोगे और दुनियाके दुख-कष्टका नौ-दशांश मिट जायगा।

यदि मन यह स्वीकार कर ले कि वह नहीं जानता तो दुनियामें जो इतनी बड़ी गड़बड़ी है वह अधिकांशतः शांत हो जायगी।

* *

"कोई भी पसंदगी नहीं रखना", इसका क्या अर्थ समझना चाहिये ? क्या विशृंखलताके बदले शृंखलताको, गंदगीके बदले स्वच्छताको और इसी प्रकारकी अन्य चीजोंको पसंद नहीं करना चाहिये ? क्या कोई भी पसंदगी नहीं रखनेका अर्थ यह होता है कि हर किसीके साथ एक समान व्यवहार किया जाय ?"

तुम यहां जिसे पसंद करना कह रहे हो, मैं उसे चुनाव करना कहूंगी। अपने जीवनके हर क्षणमें तुम्हें चुनाव करना है; जो चीजें तुम्हें नीचे खींचती हैं और जो तुम्हें ऊपर खींचती हैं, जो तुम्हें आगेकी ओर ले जाती हैं और जो तुम्हें पीछेकी ओर ले जाती हैं, उनके बीच तुम्हें चुनाव करना है, किंतु इसे मैं "पसंदगी रखना" नहीं कहती, इसे मैं कहती हूं चुनाव करना, यह है वरण करना, और यह वरणकी क्रिया अनिवार्य है, और यह वरण करना, गंदगी और स्वच्छताके बीच (चाहे भौतिक हो या नैतिक) सदाके लिये एक बार चुनाव कर लेनेकी अपेक्षा अनंत रूपसे अधिक कुछ है। इस वरणके मनोभावको रखना होगा सदैव और निरंतर, इसमें तुम्हें अनिद्र रहना होगा। किंतु मैं इसे "पसंदगी रखना" नहीं कहती।

पसंदगी रखनेका अर्थ ही होता है चुनाव नहीं करना। इस शब्दका मेरे लिये बहुत ही स्पष्ट अर्थ है। पसंदगी है एक अंधी चीज; यह है एक आवेग, एक आसक्ति, कभी-कभी यह एक अचेतन और साधारणतया हठी क्रिया होती है।

बहुत बार पसंदगी चुनावकी उल्टी दिशामें जाती है। यहां मैं एक उदाहरण दे रही हूं जिसे मैं रोज ही देखती हूं। तुम्हारे सामने कोई समस्या आती है और तुम यह चुनाव करते हो कि तुम अपनेको भगवान्‌की इच्छाके हाथोंमें पूरी तरह सौंप दोगे ताकि सच्चा समाधान मिल जाय। समाधान मिलता भी है, किंतु ऐसा क्यों होता है कि तुम निराश हो जाते हो? कारण यह है कि तुम्हारे अंदर कोई चीज, चेतन या अचेतन रूपमें किसी अन्य समाधानकी चाह, कामना या पसंदगी रखती थी। ठीक यह पसंदगी ही इस बातका कारण होती है कि यदि तुम्हारी अभीप्सा या प्रार्थनाका उत्तर वह नहीं होता जिसकी तुम्हें चाह थी तो तुम दुःखी हो जाते हो और उसे स्वीकार करनेके लिये तुम्हें संघर्ष करना पड़ता है। इसके विपरीत, यदि तुम्हें कोई भी पसंदगी न हो तो तुम्हारी प्रार्थनाके उत्तरमें जो कोई भी उत्तर आवे और जब कभी भी आवे तो तुम उसे सच्ची उत्सुकताके साथ, सहज भावसे और हर्षपूर्वक अंगीकार करते हो।

तुम्हें हर क्षण वरण करना है, हर क्षण तुम किसी-न-किसी चुनावके सामने आते हो, चुनाव करना होता है ऊपर चढ़ने या नीचे जानेके बीच, आगे बढ़ने या पीछे हटनेके बीच। किंतु इस प्रकार चुनाव करनेका अर्थ यह नहीं होता कि तुम यह पसंद करते हो कि चीजें ऐसी न होकर दूसरे प्रकारकी हों। यह चुनाव प्रति-क्षण करनेकी चीज है, यह एक मनोभाव है जिसे तुम्हें बनाये रखना होता है।

चुनाव एक प्रकारका निर्णय होता है, एक प्रकारकी क्रिया होती है। पसंदगी होती है एक कामना, एक आवेग। चुनाव किया

जाता है और किया जाना चाहिये और यदि चुनाव हो तो वह फल-की जरा भी परवाह किये बिना किया जाता है। किसी फलकी कोई आशा किये बिना तुम चुनाव करते हो। तुम अपने आंतरिक सत्यके अनुसार, अपनी उच्चतम चेतनाके अनुसार चुनाव करते हो, उसका परिणाम क्या होगा इससे तुम्हारा कोई प्रयोजन नहीं होता; तुम तो बस वरण कर लेते हो, सच्चे हृदयसे वरण करते हो। इसके विपरीत, यदि तुममें पसंदगी है तो यह पसंदगी ही तुमसे ऐसा या वैसा चुनाव करा देगी, यह पसंदगी ही तुम्हारे चुनावको विकृत कर देगी। उस समय वह हो जाता है हिसाब लगाना, वह हो जाता है सौदा करना; तब तुम इसलिये कुछ नहीं करोगे कि वही सत्य है, वही सच्चा कार्य है जिसे करना चाहिये, बल्कि तब तुम कोई विशेष फल पानेकी भावनाके साथ कार्य करते हो, और तब किसी भी चीजके लिये दरवाजा खुल जाता है।

पसंदगीकी भावना किसी परिणामसे जुड़ी होती है, चुनाव परि-णामसे स्वतंत्र होता है। मैं फिर दुहरा रही हूं, प्रतिक्षण तुम्हारे सामने वरण करनेकी आवश्यकता उपस्थित होती है और तबतक तुम सत्यतः भलीभांति चुनाव नहीं करते, पूरी सच्चाईसे चुनाव नहीं करते जबतक कि चुनावके परिणामके बदले उसके सत्यमें ही तुम्हें रुचि नहीं होती। यदि तुम कोई फल दृष्टिमें रखकर चुनाव करते हो तो तुम्हारा चुनाव झूठा हो जाता है।

तो अब तुमने समझ लिया होगा कि तुम्हारे मस्तिष्कमें एक प्रकारकी उलझन थी।

जहांतक हर किसीके साथ एक ही प्रकारका व्यवहार करनेकी बात है, यह और भी बड़ी उलझन है। इसी प्रकारकी उलझन मनुष्य तब पैदा कर लेता है, जब वह भगवान्से प्रत्येकके प्रति एक ही प्रकारसे व्यवहार करनेकी आशा करता होता है। ऐसा यदि होता तो फिर विभिन्नताका कोई उपयोग ही नहीं होता, इस बातका

कोई उपयोग भी नहीं रहता कि कोई भी दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं, हर एकके साथ एक ही तरीकेसे व्यवहार करना विभिन्नताके सिद्धांतका ही खंडन करना है।

विश्वमें जो कुछ भी है उस सबके प्रति समझदारी, एकता, प्रेम और पूर्ण सौहार्द्रका एकसा गभीर मनोभाव रखनेकी अभीप्सा तुममें विद्यमान रह सकती है, और यदि नहीं है तो तुम्हें यह अभीप्सा रखनी चाहिये। किंतु स्वयं यही मनोभाव हर दशामें हर एकके सत्य स्वरूप और उसकी आवश्यकताके अनुरूप भिन्न-भिन्न तरीकेसे बरता जायगा। दूसरे शब्दोंमें, कर्मका मूल एक-सा रहते हुए भी, विभिन्न व्यक्तियोंके प्रति, हरेकके सत्य और प्रसंगके अनुसार स्वयं वह कर्म समूचाका समूचा, बिल्कुल ही उल्टातक हो सकता है। किंतु यह संभव होता है केवल उच्चतम, गभीरतम या मूलतः सत्यतम चेतनाके लिये, जो कि सब सापेक्षिक गतियोंसे मुक्त होती है। वहां वस्तुओंका मात्र मूलगत सत्य ही नहीं, बल्कि कर्मका सत्य भी प्रति-क्षण दृष्टिमें आता रहता है, और यह सत्य अलग-अलग व्यक्तिके लिये भिन्न-भिन्न होता है। फिर भी, मैं दुहरा दूं, वह व्यक्ति जिस चेतनासे कर्म करता है, उस चेतनाकी स्थिति हर दशामें सारतः एक-सी ही रहती है।

यह समझ पानेके लिये तुम्हें चीजोंकी यथार्थ गहराईमें उतरना होगा या उन्हें उच्चतम शिखरसे देखना होगा, तब तुम मानो एक ज्योति और चेतनाका केंद्र बन जाते हो जिसमें इतनी ऊंचाई या गहराई होती है कि तुम सब चीजोंको एक साथ ही देख सको, और उनका केवल सारतत्त्व ही न देख सको बल्कि उनका सृष्ट रूप भी देख सको। और यद्यपि चेतनाका केंद्र वही एक ही रहता है, परंतु उसकी क्रिया सृष्टिकी तरह ही बहुविध होती है, यह सृष्टिके अंदर दिव्य सत्यकी संसिद्धि होती है।

अन्यथा तुम संसारकी सारी विभिन्नताको दबा देते हो और उसे

सारभूत अव्यक्त ऐक्यमें वापस ले आते हो। क्योंकि केवल असृष्ट, अव्यक्त स्थितिमें ही वह 'एक' ऐक्यावस्थामें रहता है। तुम जैसे ही सृष्टिमें प्रवेश करते हो, वह 'एक' बहु हो जाता है और बहु-वैचित्र्यमें प्रकट होता है। बहु-वैचित्र्यका अर्थ होता है कर्म और साधनका बहु-वैचित्र्य भी।

अंतमें, मैं कह दूं, चुनाव करना होगा परिणामकी परवाह किये बिना और कर्म करना होगा सृष्टिके अंदर विद्यमान बहु-वैचित्र्यके सत्यके अनुसार।

* *

"भगवान्‌की इच्छाके साथ अपनी इच्छा कैसे एक की जाय?"

सर्वप्रथम इसे चाहना होगा।

फिर, इसे चाहते रहना होगा, सदैव चाहते रहना होगा, जब कठिनाइयां आवें तो डगमगाना नहीं होगा, तबतक चाहते रहना होगा जबतक कि सफलता न मिल जाय।

बस।

कुछ थोड़ी-सी और चीजें आवश्यक हैं जैसे :—

अहंकार न रखना।

तुच्छ संकीर्ण मानसिक वृत्ति न रखना।

अपनी ही पसंदगियोंके अनुसार जीवन न बिताना।

कामनाएं न रखना।

मानसिक राय न बनाना आदि-आदि।

यह एक काफी लंबी प्रक्रिया है, क्योंकि इसके लिये साधारण प्रकृतिको परिवर्तित करना बड़ा आवश्यक है।

अपने मनकी समस्त सीमाओंको तोड़ डालो, अपने प्राणकी समस्त कामनाओंका नाश कर डालो, अपनी भौतिक चेतनाकी सारी

पसंदगियोंको निकाल डालो, यह सब करनेके बाद ही तुम भगवान्‌की इच्छाके संपर्कमें रहनेकी आशा कर सकते हो।

और जब तुम उस इच्छाके संपर्कमें आ गये, तब तुम्हें संपूर्ण रूपमें उसे अपने जीवनमें ले आना होगा, अर्थात् अपनी समस्त सत्ताको एकीभूत करना होगा, सब कुछ एक अनन्य इच्छाके अधीन हो हो जायगा। कारण, भगवान्‌की इच्छासे एकात्म हो जानेकी क्षमता एकमात्र एकीभूत इच्छामें ही होती है।

"मनके हस्तक्षेपसे छुटकारा पानेके लिये क्या करना चाहिये ?"

मनको नीरव रखना सीखना होगा — उसे रहना होगा स्थिर, सचेत और नीरव। यदि तुम मन को सीधे ही मौन करा चाहो तो यह बड़ा कठिन होता है, प्रायः असंभव होता है; क्योंकि मनका जो अत्यंत स्थूल अंश है वह कभी अपनी क्रिया बंद नहीं करता, वह बिना रुके रेकार्ड करनेवाली मशीनकी तरह निरंतर चलता ही रहता है। जो कुछ वह अंकित करता है उसे दुहराता रहता है, जबतक उसे बंद करनेका बटन नहीं होता तबतक वह चलता ही रहता है, अनिश्चित कालतक चलता ही रहता है। दूसरी ओर, यदि तुम अपनी चेतनाको उच्चतर लोकोंमें, सामान्य मनसे ऊपर, ले जाओ तो इस तरह ज्योतिकी ओर उद्घाटित होनेसे मन स्थिर हो जाता है, अब वह हिलता-डुलता नहीं, और इस प्रकार जो मनकी नीरवता प्राप्त होती है वह स्थायी बन सकती है। उस लोकमें एक बार प्रवेश कर जानेके बाद, तुम एकदम कभी उससे बाहर नहीं आ सकते — बाह्य मन सदा ही स्थिर बना रहता है।

बस, सच्चा समाधान है उच्चतर प्रकाशके लिये अभीप्सा करना।

* *

"जब हम मानसिक चेष्टाओं या बौद्धिक व्यापारोंमें एकाग्र होते हैं तो हम कभी-कभी भगवान्‌को क्यों भूल जाते हैं या उनके साथ अपना संस्पर्श क्यों खो देते हैं?"

तुम इसलिये खो देते हो कि तुम्हारी चेतना अभी भी विभाजित रहती है, भगवान् तुम्हारे मनके अंदर अभी प्रस्थापित नहीं हुए हैं; तुम दिव्य जीवनके प्रति संपूर्णतया निवेदित नहीं हुए हो। नहीं तो ऐसी चीजोंपर तुम किसी भी हदतक एकाग्र रहते और फिर भी यह बोध बनाये रख सकते कि भगवान् तुम्हें सहायता और अवलंबन दे रहे हैं।

सारे धन्धोंमें, वे चाहे बौद्धिक हों या क्रियात्मक, तुम्हारा एक मात्र सूत्र यह होना चाहिये, "स्मरण रखो और अर्पण करो।" तुम जो कुछ भी करो वह भगवान्‌की पूजाके रूपमें करो। यह चीज तुम्हारे लिये एक अति उत्तम अनुशासन भी होगी; वह तुम्हें बहुत-सी मूर्खतापूर्ण और निरर्थक चीजें करनेसे रोकेगी।

"प्रायः कार्यके आरंभमें ऐसा किया जा सकता है; किंतु कार्यमें संलग्नता आनेपर विस्मृति हो जाती है। हम कैसे स्मरण रखें?"

उस स्थितिको प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाना चाहिये जो एक ऐसी चेतना है जिसमें भगवान्‌के बिना कोई काम करना असंभव है। यही अवस्था योगकी सच्ची उपलब्धि है, वह अंतिम परिपूर्णता और संसिद्धि है जिसके लिये और सभी चीजें महज तैयारी हैं। उस चेतनामें पहुंचनेपर यदि तुम भगवान्‌के बिना रहो तो तुम्हारे कार्यका एकदम उद्‌गम ही विलीन हो जाता है, ज्ञान, शक्ति सब चले जाते हैं। किंतु जबतक तुम यह अनुभव करते हो कि तुम जिन शक्तियों-को व्यवहृत कर रहे हो वे तुम्हारी अपनी हैं, तबतक तुम भगवान्‌की शक्तिके सहारेकी आवश्यकता नहीं अनुभव करोगे।

योगके आरंभमें तुम भगवान्‌को बहुत बार भूल जा सकते हो। किंतु सतत अभीप्साके द्वारा तुम अपनी स्मृतियां बढ़ा सकते और विस्मृतिको घटा सकते हो। किंतु यह चीज किसी कड़े अनुशासन या कर्त्तव्यके रूपमें नहीं होनी चाहिये; यह प्रेम और आनंदकी क्रिया होनी चाहिये। तब बहुत शीघ्र ऐसी स्थिति आयगी जब, यदि हर क्षण और हर कार्यमें तुम भगवान्‌का सान्निध्य न अनुभव करो तो तुम तत्काल एकाकी, उदास और दुःखी अनुभव करने लगोगे।

जब कभी तुम यह देखो कि भगवान्‌की उपस्थितिका अनुभव किये बिना तुम कोई काम कर सकते हो और फिर भी पूर्णतः सुखी रह सकते हो, तो तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि अपनी सत्ताके उस अंगमें तुम निवेदित नहीं हुए हो। यह सामान्य मानवकी राह है जिसे भगवान्‌की कोई आवश्यकता नहीं होती, किंतु दिव्य जीवनके साधकके लिये चीज बिलकुल भिन्न है। और जब भगवान्‌के साथ तुम संपूर्णतया एकत्व प्राप्त कर चुके हो, तब यदि भगवान् एक पलके लिये भी तुमसे अलग हट जायें तो तुम बस निर्जीव होकर गिर पड़ोगे, क्योंकि तब भगवान् ही होते हैं तुम्हारे जीवनके जीवन, तुम्हारा सारा अस्तित्व, तुम्हारा एकमात्र और संपूर्ण अवलंबन। यदि भगवान् न हों तो और कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता।

भगवत्कृपापर निर्भरता

किसीने श्रीमाताजीसे प्रश्न किया: बीमारीको ठीक करनेके लिये क्या करना चाहिये: अपनी इच्छाशक्तिका प्रयोग करना चाहिये या इस विश्वासके साथ रहना चाहिये कि ऐसा हो जायगा अथवा उसे बिलकुल भग-

वान्‌की शक्तिके हाथोंमें अपनेको सौंप देना चाहिये ?"

श्रीमांने उत्तर दिया :

ये सब एक ही चीजको करनेके इतने सारे तरीके हैं।.... किंतु तुम जो कुछ भी मांगो या जो कुछ भी प्रयत्न करो, तुम्हें अपनी पूरी शक्ति भर प्रयत्न करते हुए अपने ज्ञान और शक्तिका प्रयोग करते हुए भी यही अनुभव करना चाहिये कि परिणाम संपूर्णतया भगवत्कृपापर निर्भर करता है।" भगवत्कृपापर निर्भर करनेके इस भावको श्रीमां आगे और समझाती हैं। —सं०

....संसारमें सारे भौतिकवाद और प्रत्यक्षवादका निर्माण ही इसलिये हुआ है कि लोग इसे भगवत्कृपाका प्रश्न नहीं बनने देना चाहते। यदि उनकी बीमारी ठीक हो जाती है तो वे ऐसा कहना चाहते हैं, "इस बीमारीको मैंने ठीक किया है", यदि वे प्रगति करते हैं तो यह कहना चाहते हैं, "प्रगति मैंने ही की है", यदि वे किसी चीजको व्यवस्थित करते हैं तो वे यह घोषणा करना चाहते हैं, "इस व्यवस्थाको लानेवाला मैं ही हूं"। और बहुत, बहुत-से लोग जो इससे भिन्न आचरण करनेकी कोशिश करते हैं, वे लोग भी यदि अपने अंदर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि वे क्षण कितने थोड़े होते हैं जब कि वे सहज भावसे और सच्चाईसे, न कि इस प्रकार जैसे कि कोई बात कोई इसलिये कहता है कि वह जानता है कि वैसी बात कहनी चाहिये, या जैसे कि कोई बात कोई इसलिये सोचता है कि वैसा सोचनेका रिवाज है, वरन् सहज एवं सच्चे भावसे और संपूर्ण हृदयसे यह जानते हों कि कार्य करनेवाले स्वयं वे नहीं हैं वरन् भगवान्‌की शक्ति कार्य करती है। वे क्षण कितने थोड़े होते हैं जब कि कोई प्रगति कर लेनेपर, अपने अंदरमें कोई परिवर्तन कर लेनेपर, कोई चीज सीख लेनेपर, तुम सहज भावसे, इच्छाशक्तिका प्रयत्न किये बिना, कोई चिंतन किये बिना, अपने-आपसे यह कहनेकी आवश्यकताके बिना कि 'ऐसा सोचना चाहिये', सहज रूपमें तुम

जानते होते हो कि भगवान्‌की शक्तिके बिना कुछ भी नहीं किया गया होता।

अपने अंदर देखो, यह बड़ी मनोरंजक चीज है, बहुत ही मनोरंजक है, (अपने-आपको कहे बिना ही) तुम दिनमें कितनी बार सोचते हो कि "यह मैंने किया है", "मैं यह कर सका हूं", "मैंने सफलता पायी है", "मैं अमुक जगह सफल नहीं हुआ" और जब तुम कोई अच्छा प्रयत्न कर लेते हो, जब तुम्हें कोई फल मिल जाता है, तब तुम्हें एक मुहूर्त्त या और अधिक ठहरकर यह कहनेके लिये थोड़ा सोचना पड़ता है कि "यदि भगवान्‌की शक्ति मुझे सहायता न देती तो शायद मैं इसे न कर पाता"। सच पूछो तो सहज भावसे तो ये ही शब्द आते हैं, "ओह, मैं सफल हो गया!" सच है न?

इसमें संदेह नहीं कि मनका एक भाग ऐसा होता है जो शिक्षित हो चुका है, सीख चुका है, विचार चुका है, समझ चुका है, सद्वृत्ति रखता है और भगवान्‌की शक्ति और कृपाकी वास्तविकताको सत्यतः अनुभव भी करता है। किंतु यह मनका एक भाग ही होता है और वह सदा सक्रिय नहीं रहता, समय-समयपर तुम्हें उसका आवाहन करना होता है, उससे सलाह पूछनी होती है: "मेरे लिये कौनसा मनोभाव ग्रहण करना उत्तम होगा?", "मुझे क्या सोचना चाहिये?"

मैं समझती हूं कि जिन लोगोंने योग-साधना अपनायी है वे यदि सच्चे होते हैं, यदि वे एक क्षण विचार करते हैं तो वे अपने-आपसे कहते हैं: "मैं देख नहीं पाया, किंतु यदि मुझे सफलता मिली है तो संभवतः इसलिये कि दिव्य शक्तियां मेरी सहायताके लिये वहां मौजूद थीं, नहीं तो मैं सफल नहीं हो सकता था।" यह अच्छी तरह जानी हुई बात है।

हां, एक समय ऐसा आता है जब तुम यह जानते हो कि यदि ये शक्तियां न हों तो तुम एक अंगुली भी नहीं उठा सकते। किंतु यह बादकी चीज है।

परंतु आरंभमें, यदि तुम विचार करते हो, अपने-आपको महज ध्यानपूर्वक देखते हो तो कितनी अधिक बार यह कहते हुए पकड़ लेते हो, "यह सब करनेवाला तो मैं हूं" और तब तुम कभी-कभी अपनेको बधाई देते हो, अपने-आपसे कहते हो, "आखिर मैं भी कुछ कर सकता हूं, मुझमें भी सामर्थ्य है।"

मैं और आगे बढ़कर यह कह सकती हूं कि यदि लोगोंको ऐसा कहनेके सुखसे वंचित कर दिया जाय कि "यह काम मैंने किया है, इसमें मैं सफल हुआ हूं, मैंने प्रगति की है, मैंने कितनी अच्छी तरह खेल खेला है!" तो फिर कितने लोग कुछ भी करने में समर्थ होंगे? यदि उन्हें इस सुखसे वंचित कर दिया जाय तो कितने लोग सच्चाईके साथ कुछ भी कर सकेंगे? मैं ऐसे व्यक्तियोंको जानती हूं जिनका मन उनकी सत्ताके अन्य अंगोंसे बहुत अधिक विकसित था। उनकी समझ बहुत अच्छी थी (शायद अत्यधिक अच्छी)। वे ध्यान करनेको बैठ जाते थे और उनकी सारी शक्ति बाहर निकल जाती थी, सारी जीवनी-शक्ति उड़कर एक प्रकारकी शांतिमें विलीन हो जाती थी; वह शांति असुखकर तो नहीं होती थी पर बिलकुल निश्चल होती थी। उस स्थितिमें कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती थी, हिलने-डुलनेकी आवश्यकता नहीं रहती थी, वे बस स्वप्न देखते थे....। किसी वृक्षके नीचे, पालथी मारकर तुम बैठ जाते हो और जो कुछ भी तुम्हारे लिये करना है, वह सब, आवश्यकता हो तो तुम्हें खिलानेका काम भी, भगवान्के हाथमें छोड़ देते हो...यह शायद बहुत अच्छी बात है, किंतु इससे यह मालूम होता है कि यंत्र अभी तैयार नहीं है, वह वास्तवमें भगवान्की सेवा नहीं कर रहा है, वह अहंकी सेवामें रत है, और जब अहं हटा लिया जाता है तो वह कुछ भी नहीं करता। अतः जबतक व्यक्ति अहंमें निवास करता है, उससे काम करानेके लिये इस भ्रमकी आवश्यकता होती है; जबतक उसका पूरी तरह रूपांतर न हो जाय या कम-से-

कम उसके अंदर सच्ची चेतना प्रतिष्ठित न हो जाय, तबतक उसका काम करना चालू रखनेके लिये इसकी आवश्यकता है।

मैं कह चुकी हूं और फिर कहती हूं, "तुम जो कुछ भी करो, जो कोई भी विधि तुम व्यवहृत करो और चाहे तुमने कितनी ही निपुणता और वास्तविक शक्ति क्यों न प्राप्त कर ली हो, तुम्हें फल भगवान्के हाथमें ही छोड़ देना चाहिये। प्रयत्न तुम सदा कर सकते हो, परंतु तुम्हारे प्रयत्नका फल तुम्हें देना या न देना भगवान्के हाथ है। यहींपर तुम्हारी निजी शक्ति समाप्त हो जाती है: यदि तुम्हें फल प्राप्त होता है तो वह देनेवाली शक्ति तुम्हारी नहीं, भगवान्की होती है।" यह विचार सभी धर्मोंमें सिखाया जाता है और इसी विचारने लोगोंमें कितना क्षोभ उत्पन्न कर दिया है, "ओह! यह सब करनेवाला मैं नहीं हूं!" और उन्हें नास्तिक बना दिया है।

और यह "मैं", यदि तुम जानते हो कि यह कितना बड़ा है! कैसा स्थान ले रखा है इसने . . . सारे भौतिकवादके आधारमें यही "मैं" है।

*   *

धरतीपर मानवोंके बीच भगवत्कृपाकी मुक्तिदायिनी क्रियाके दो सहपूरक पक्ष हैं। ये दोनों पक्ष समान रूपसे अपरिहार्य हैं, किंतु उनकी मान्यता समान रूपसे नहीं है।

एक तो सर्वोच्च अक्षर शांति जो कि चिंता, भार और कष्टसे मुक्त करती है।

और दूसरी सक्रिय सर्वशक्तिशाली प्रगति जो कि "बेड़ियों", बंधनों और तामसिकतासे मुक्त करती है।

शांति सर्वत्र दिव्य मानी जाती और समादृत होती है, किंतु प्रगतिका स्वागत केवल वे लोग ही करते हैं जिनकी अभीप्सा तीव्र और साहसिक होती है।

*   *

"यह कहा गया है कि योगमें प्रगति करनेके लिये हमें भगवान्को हर चीज, जो सब छोटी-छोटी चीजें जीवनमें हम करते हैं या जो हमारी हैं, वे सभी अर्पित करनी चाहियें। इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है?"

योगका अर्थ है भगवान्के साथ युक्त होना, और यह युक्तावस्था आती है अर्पणके द्वारा—इसका आधार होता है भगवान्को तुम्हारा आत्मार्पण। आरंभमें तुम यह अर्पण सामान्य रूपसे शुरू करते हो, मानो सदाके लिये एक बार कर देते हो; तुम कहते हो, "मैं भगवान्का दास हूं; मेरा जीवन भगवान्को पूर्णतः अर्पित हो गया है; मेरे सारे प्रयत्न दिव्य जीवनकी प्राप्तिके लिये हैं"। किंतु यह तो प्रथम डग ही है, यह पर्याप्त नहीं है। जब तुम्हारा यह संकल्प हो गया, यह निर्णय हो गया कि तुम्हारा सारा जीवन भगवान्को दे दिया जायगा तब फिर यह बाकी रह जाता है कि तुम हर क्षण इसे याद रखो और अपने जीवनके सारे ब्योरोंमें इस संकल्पको प्रयुक्त करो। हर पगपर तुम्हें यह अनुभव होना चाहिये कि तुम भगवान्के हो; तुम्हें यह अनुभूति निरंतर होनी चाहिये कि जो कुछ भी तुम सोचते या करते हो उसमें सदा भगवान्की चेतना ही तुम्हारे द्वारा कार्य करती है। तब तुम्हारे पास ऐसी कोई चीज नहीं रह जाती जिसे तुम अपनी कह सको; हर चीजको तुम भगवान्से आती हुई अनुभव करते हो और उसे तुम्हें उसीके मूल स्रोत भगवान्को फिरसे वापस दे देना होता है। जब तुम इस स्थितिमें पहुंच जाओगे तब छोटी-से-छोटी चीज भी, जिसपर तुम साधारणतया बहुत ध्यान नहीं देते या जिसकी परवा नहीं करते, तुच्छ और निरर्थक नहीं रह जाती; बल्कि वह पूर्ण सार्थक हो जाती है और आगेका विशाल क्षितिज खोल देती है।

बस, अपने सामान्य अर्पणको ब्योरेवार अर्पणमें कार्यान्वित करने-

का यही तरीका है। निरंतर भगवान्‌के सान्निध्यमें रहो, इस भावमें रहो कि भगवान्‌की उपस्थिति ही तुम्हें चला रही है और जो कुछ भी तुम करते हो उसे वही कर रही है। अपनी सारी क्रियाएं उसे ही अर्पित करो, प्रत्येक मानसिक क्रिया ही नहीं, प्रत्येक विचार और भाव ही नहीं, वरन् भोजन करने-जैसी अपनी अति सामान्य और बाह्य क्रियाओंको भी अर्पित करो। जब तुम भोजन करो तो तुम्हें यह अनुभव करना चाहिये कि तुम्हारे द्वारा भगवान् ही भोजन कर रहे हैं। जब तुम अपनी सारी क्रियाओंको इस प्रकार एक अखंड जीवनमें एकत्रित कर सकोगे तब तुम्हारे अंदर विभाजनकी जगह एकता आयगी। तब ऐसा नहीं रह जायगा कि तुम्हारी प्रकृति-का एक अंग तो भगवान्‌को अर्पित रहे और बाकी भाग अपने सामान्य रास्तोंपर बने रहें, सामान्य चीजोंमें संलग्न रहें; तब तुम्हारा सारा जीवन ले लिया जाता है, तुम्हारे अंदर क्रमशः सर्वांगपूर्ण रूपांतर साधित किया जाता है।

पूर्णयोगमें संपूर्ण जीवनको, उसके छोटे-से-छोटे ब्योरेतकमें, रूपांतरित करना होता है, दिव्य बनाना होता है। यहां कोई भी चीज ऐसी नहीं जो महत्त्व न रखती हो, कोई भी चीज ऐसी नहीं जो नगण्य हो। तुम ऐसा नहीं कह सकते कि "जब-जब मैं ध्यान करूंगा, दार्शनिक ग्रंथ पढ़ूंगा या इन वार्ताओंका श्रवण करूंगा तब-तब मैं इस अवस्थामें रहूंगा कि ज्योतिकी ओर खुला रहूं और उसका आवाहन करूं, किंतु जब-जब मैं घूमने निकलूंगा या मित्रोंसे मिलने जाऊंगा तब-तब मैं इन सबको भूल जाऊंगा"। ऐसा मनोभाव बनाये रखनेका अर्थ यह होता है कि तुम अरूपांतरित रह जाओगे और तुम्हें कभी सच्ची युक्तावस्था नहीं प्राप्त होगी; तुम सदा विभाजित रहोगे; अधिक-से-अधिक यह होगा कि इस महत्तर जीवनकी तुम्हें केवल झांकियां मिलेंगी। क्योंकि, ध्यानमें या तुम्हारी आंतरिक चेतनामें तुम्हें कुछ अनुभूतियां या सिद्धियां भले ही प्राप्त हो जायें,

तुम्हारा शरीर और तुम्हारा बाह्य जीवन अपरिवर्तित ही रह जायंगे।

जो आंतरिक ज्योति शरीर और बाह्य जीवनका कोई ख्याल नहीं रखती वह बहुत उपयोगी नहीं होती; क्योंकि वह दुनियाको वैसी ही हालतमें छोड़ देती है जैसी कि वह अभी है। अबतक ऐसा ही बराबर होता रहा है। जिन्हें बहुत महान् और शक्तिशाली सिद्धियां प्राप्त हुईं वे लोग भी आंतरिक स्थिरता और शांतिमें निर्विघ्न निवास करनेके लिये जगत्से अलग हो गये। जगत् पड़ा रहा अपने रास्तेपर, दुःख और जड़ताने, मृत्यु और अज्ञानने जीवनके इस भौतिक स्तरपर अपना शासन ज्यों-का-त्यों बनाये रखा।

जो लोग इस प्रकार संसार छोड़कर चले जाते हैं, उनके लिये इस हलचलसे बाहर निकल जाना, कठिनाईसे मुंह मोड़ लेना और अपने लिये अन्यत्र कोई सुखकी अवस्था पा लेना सुखकर हो सकता है, किंतु दुनिया और जीवनको वे सुधारे बिना, रूपांतरित किये बिना ही छोड़ देते हैं और स्वयं अपनी बाह्य चेतनाको भी वे अपरिवर्तित ही छोड़ देते हैं, अपने शरीरको भी पूर्ववत् अनुन्नत अवस्थामें छोड़ देते हैं। ये लोग जब भौतिक जगत्में वापिस लौटें तो संभव है कि इनकी दशा एक साधारण मनुष्यकी अपेक्षा भी बुरी हो, क्योंकि भौतिक वस्तुओंपर वे अपना अधिकार गंवा चुके होते हैं और यह संभावना रहती है कि भौतिक जीवनमें उनका व्यवहार बेढंगा हो, उस जीवनकी गतियोंमें वे असहाय अनुभव करें और हर गुजरनेवाली शक्तिकी दयापर निर्भर करें।

इस प्रकारका आदर्श उन लोगोंके लिये भला हो सकता है जो इसे चाहते हैं, किंतु यह हमारा योग नहीं है। क्योंकि हम यह चाहते हैं कि इस जगत्पर भगवान्की विजय हो, इसकी सारी गतियों-पर विजय हो और यहींपर भगवान्की संसिद्धि हो। किंतु हम यदि यह चाहते हैं कि भगवान्का यहां राज्य हो तो यहां हमारे पास जो कुछ भी है, जो कुछ भी हम करते हैं और जो कुछ भी हम हैं

वह सब हमें भगवान्को अर्पित कर देना होगा। यह सोचनेसे काम नहीं चलेगा कि कोई भी चीज महत्त्वहीन है या बाह्य जीवन और उसकी आवश्यकताएं दिव्य जीवनके अंग नहीं हैं। यदि हम ऐसा सोचें तो हम वहीं रह जायंगे जहां कि हम सदासे रहे हैं और बाह्य जगत्पर विजय नहीं प्राप्त होगी; उस क्षेत्रमें कोई स्थायी चीज क्रियान्वित नहीं हो सकेगी।

* *

"कुछ लोगोंके साथ ऐसा देखा जाता है कि जब वे भगवान्की ओर मुड़ते हैं तो उनका प्रत्येक भौतिक अवलंब या जो कुछ भी उन्हें प्रिय होता है वह सब उनके जीवनसे विलग कर दिया जाता है। यदि किसी व्यक्तिको प्यार करते होते हैं तो वह व्यक्ति भी छीन लिया जाता है।"

ऐसा सबके साथ नहीं होता। ऐसा उनके ही साथ होता है जिनकी पुकार हुई होती है।

* *

यहां हम एक बहुत बड़ी समस्यामें उलझ जाते हैं....। एक जीवके लिये क्या तो अच्छा है और क्या बुरा —— इसकी भावना उसकी विकसित चेतनाके लिये ठीक वही नहीं होती जो कि दिव्य चेतनाके लिये होती है। तुम्हें जो कुछ भला, अनुकूल प्रतीत होता है वही आध्यात्मिक दृष्टिसे सदा तुम्हारे लिये सबसे उत्तम नहीं होता। यह बात तुम्हें आरंभसे ही जाननी होगी कि भागवत दृष्टिसे जो चीज तुम्हें सबसे शीघ्र लक्ष्यतक पहुंचानेवाली होती है वह तुम्हारी दृष्टिसे एकदम भिन्न होती है और तुम उसे समझ नहीं सकते। इसी कारण तुम्हें आरंभसे ही अपने-आपसे कहना चाहिये, "यह ठीक है। मैं प्रत्येक चीज स्वीकार करता हूं, मैं पीछे समझ जाऊंगा।"

बहुधा तुम ऐसे लोगोंको देखोगे जो योग आरंभ करनेसे पहले अपेक्षाकृत सुखी जीवन बिताते थे, पर ज्योंही वे योग आरंभ करते हैं वे उन सब परिस्थितियोंसे कम या अधिक कठोर रूपमें विच्छिन्न कर दिये जाते हैं जिनसे वे विशेष रूपसे आसक्त थे। फिर वे बहुत उद्विग्न हो जाते हैं। संभवतः उनमें यह स्वीकार करनेकी सरलता तो नहीं होती, वे अन्य विचारों और शब्दोंका आश्रय ग्रहण करते हैं, पर बात यह रूप लेती है: "यह कैसी बात है! मैं एक भला आदमी हूं पर मेरे साथ कृपापूर्ण व्यवहार नहीं किया जाता!" न्यायसंबंधी समूची मानवीय धारणा वहां आ उपस्थित होती है: "हम अच्छे बननेकी कोशिश करते हैं और देखो, कैसे-कैसे अनर्थ घटित होते हैं! जिन चीजोंको तुम प्यार करते थे वे सब तुमसे हटती जा रही हैं, जो सुख तुम्हें प्राप्त थे वे सब तुमसे दूर हो रहे हैं, जिन लोगोंको तुम प्यार करते थे वे तुम्हें छोड़ रहे हैं; भला बनने और कोई प्रयास करनेका कष्ट उठानेसे कोई लाभ नहीं।" और यदि तुम अपने तर्कको काफी दूरतक ले जाओ तो एकाएक तुम असली रोगको पकड़ लोगे — समझ जाओगे कि तुमने स्वार्थवश योग करना चाहा था, स्वार्थवश तुमने संत बनना चाहा था, तुमने सोचा था कि तुम्हारी अवस्था अधिकाधिक अच्छी हो जायेगी और तुम्हारी अच्छाईके लिये तुम्हें पारितोषिकमें मिठाइयां प्राप्त होंगी! ऐसा घटित नहीं होता!... ऐसे समय सबसे बढ़िया शिक्षा जो तुम्हें दी जा सकती है वह यह अस्वीकृति ही है। क्योंकि जबतक तुम्हारी अभीप्साके पीछे कोई कामना छिपी हुई है और जबतक तुम्हारे हृदयमें भगवान्के साथ मोल-तोल करनेकी यह भावना विद्यमान है तबतक चीजें आयेंगी और तुम्हें आघात पहुंचायेंगी और तबतक आघात पहुंचाती रहेंगी जबतक तुममें सच्ची चेतना नहीं जागृत हो जाती, कोई शर्त्त नहीं रह जाती, कोई मोल-तोलका भाव नहीं रह जाता।

* *

"क्या भगवान् हमें कभी-कभी हमारी इच्छित वस्तु नहीं देते?"

निश्चय ही देते हैं। एक युवक था जो योग करना चाहता था; किंतु उसका पिता नीच और क्रूर था। वह उसे बहुत कष्ट देता था और योग करनेंसे रोकना चाहता था। युवक व्याकुल हो गया था और अपने पिताके हस्तक्षेपसे मुक्त होना चाहता था। शीघ्र ही पिता बीमार पड़ गया। बहुत सख्त बीमारी हो गयी और वह मरनें-मरनेको हो गया। इसपर युवककी प्रकृतिका दूसरा भाग उठ खड़ा हुआ और वह अपने दुर्भाग्यपर जोरोंसे विलाप करने लगा और चिल्ला पड़ा, "आह! मेरे बिचारे पिता कितने बीमार हैं! कैसे दुःखकी बात है! आह! अब क्या करूं?" पिता चंगा हो गया। युवकनें प्रसन्नता मनायी और फिर योग करनेको उद्यत हुआ। और पिता भी फिरसे विरोध करने लगा और उसे कष्ट देने लगा — इस बार दुगुने जोरसे। युवक निराशामें अपना सिर पीटता हुआ रो पड़ा, "मेरे पिता मेरे मार्गमें अब पहलेसे भी अधिक बाधा दे रहे हैं।"

सारी बात यह है कि हमें यह जानना चाहिये कि हम ठीक चाहते क्या हैं।

भगवान् अपने साथ सदा पूर्ण स्थिरता और शांति लाते हैं। यह सच है कि एक विशेष श्रेणीके भक्त साधारणतया बहुत ही भिन्न दृश्य प्रस्तुत करते हैं; वे उछलते-कूदते हैं, चिल्लाते हैं, हंसते हैं, गाते हैं; कहा जाता है कि वे यह सब भक्तिके आवेशमें करते हैं। किंतु वास्तवमें ऐसे लोग भगवान्‌में निवास नहीं करते, वे अधिकांशतः प्राणिक स्तरमें निवास करते हैं।

तुम कहोगे कि रामकृष्णके भी भावावेशके काल आते थे और वे हाथ ऊपर उठाकर नाचते-गाते थे। पर इस बातकी सच्चाई यह है — तुम्हारी आंतर सत्ताकी क्रिया पूर्ण हो सकती है किंतु यदि बाह्य सत्ता दुर्बल या अरूपांतरित हो तो वह तुम्हें शक्तियोंको ग्रहण

करनेकी एक ऐसी अवस्थामें ला देती है कि तुम तीव्र भावावेशसे भर जाते हो। जहां बाह्य सत्ता आंतरिक सत्ताका विरोध करती है या पूरा-का-पूरा आनंद नहीं समा सकती, वहां बाहरी अभिव्यक्तिमें यह विश्रृंखलता और अराजकता आ जाती है।

तुम्हारा शरीर सबल होना चाहिये। तुम्हारी स्नायुएं सबल होनी चाहियें। तुम्हारी बाह्य सत्तामें समताका सबल आधार होना चाहिये। यदि तुममें यह आधार स्थापित हो गया है तो तुम अपने अंदर विपुल भावावेश समाये रख सकते हो और तुम्हें शोर मचाकर उसे बाहर नहीं निकालना होगा। इसका अर्थ यह नहीं होता कि तुम अपने भावोंको व्यक्त नहीं कर सकते, बल्कि तुम उन्हें सुंदर और सुसमंजस रूपमें व्यक्त कर सकते हो। रोना, चिल्लाना, नाचना आदि सदा ही दुर्बलताका प्रमाण होता है, वह दुर्बलता चाहे प्राणिक प्रकृतिकी हो या मानसिक या दैहिक प्रकृतिकी; क्योंकि इन सारे स्तरोंपर आत्म-संतुष्टिके लिये ही क्रिया हुआ करती है। जो व्यक्ति नाचता है, कूदता है, चिल्लाता है, उसे यह भावना रहती है कि उसकी उत्तेजनामें कोई-न-कोई बड़ी असाधारणता है; और उसकी प्राणिक प्रकृति उसमें बहुत आनंद लेती है।

यदि तुम्हें भागवत अवतरणका दबाव सहना है, तो तुम्हें बहुत सबल और सशक्त होना चाहिये, नहीं तो तुम चूर-चूर हो जाओगे। कुछ लोग पूछते हैं, "भगवान् अभीतक क्यों नहीं आये?" क्योंकि, तुम अभीतक तैयार नहीं हो, यदि एक छोटी-सी बूंदसे तुम नाचने, गाने और चिल्लाने लगते हो तो सारी चीज यदि उतर आये तो भला क्या होगा?

अतः जिनके शरीर, प्राण और मनमें सशक्त, दृढ़ और बृहत् आधार नहीं होता उन्हें हम कहते हैं, "खींचातानी न करो", अर्थात् "भगवान्‌की शक्तियोंके साथ खींचातानी करनेकी कोशिश न करो, वरन् शांति और स्थिरताके साथ प्रतीक्षा करो।" क्योंकि वे लोग

अवतरणको सह नहीं पायेंगे। किंतु जिनके अंदर आवश्यक आधार और नींव विद्यमान हैं उन्हें हम इसके विपरीत कहते हैं, "अभीप्सा करो और खींचो।" क्योंकि ये लोग ग्रहण कर पायेंगे और भगवान्‌से अवतरित होनेवाली शक्तियां उनमें उथल-पुथल भी नहीं मचायेंगी।

सच्चे ज्ञानकी ओर पहला पग

मानव जानकारी ठोस और पूर्ण होती है, इस धारणाकी भ्रांतिसे मुक्त होना ही पहला पग है और शायद यह सबसे कठिन भी है।

उदाहरणके लिये, तुम यदि नाना विज्ञानोंका अध्ययन करो, विज्ञान या दर्शनकी नाना शाखाओंका या ऐसी अन्य चीजोंका अध्ययन करो, यदि इनका अध्ययन गंभीरता और गहराईसे करो, तो तुम्हें आसानीसे अनुभव हो जाता है कि ये सारी जानकारियां कितनी सापेक्षिक होती हैं। किंतु जब तुम एक डग उतरकर मानसिक क्रियाके एक नीचेके स्तरपर आते हो जो कि जीवनकी व्यावहारिक समस्याओंके प्रति तुम्हारे मनोभावका निर्धारण और शासन करता है तब तुम उन्हें बौद्धिक प्राणियोंकी या बौद्धिक प्राणी होनेके मार्गपर चलनेवालोंकी दृष्टिसे देखते हो, हर क्षण तुम चीजोंके बारेमें ऐसे ख्यालोंका समूह बना लेते हो जो कि सच्चा ज्ञान नहीं होते, बल्कि जानकारी होते हैं, मानसिक रचना होते हैं। इनके आधार होते हैं निरीक्षण, परीक्षण और अध्ययन और तुम्हारी बढ़ती आयुके साथ-साथ इन सबकी भी संख्या बढ़ती जाती है। यदि तुममें सशक्त बुद्धि नहीं है और उच्च-तर लोकोंके प्रति तुम खुले हुए नहीं हो तो इन्हीं मानसिक रचनाओं-के अंदर तुम निवास करते हो और अपने अनुभवों और निरीक्षणों-के पूर्ण मूल्य-महत्त्वमें तुम्हें सहज, स्वतःस्फूर्त्त और अडिग विश्वास

रहता है। वास्तवमें ये सारी मानसिक रचनाएं तुम्हारी सत्तामें स्वतःचालित रूपसे क्रिया करती हैं। तुमसे वे किसी सचेतन चिंताकी अपेक्षा नहीं करतीं, तुम्हारे अंदर इन दो गतियोंको एक साथ जोड़नेका एक तरहका अभ्यास-सा हो जाता है कि अमुक चीज परिणाममें अनिवार्यतः अन्य अमुक चीज लायगी और जब तुम यह व्यापार बहुत बार घटित होते देख लेते हो तब इससे तुममें अपने संबंधकी और अपने जीवनकी इन जानकारियोंके पूर्णतः मूल्यवान् होनेकी भावना आ जाती है।

और इस क्षेत्रमें अनंततः अधिक कठिन होता है यह समझ पाना कि ज्ञानका यह तरीका सापेक्षिक होता है, अनिश्चित होता है, यहांतक कि भ्रमपूर्ण भी होता है। इसका पता तुम्हें केवल तब चलता है जब कि अनुशासन और आध्यात्मिक प्रगतिके लिये संकल्प रखकर तुम इन चीजोंको गहरी आलोचनात्मक दृष्टिसे देखने लगते हो। तब तुम्हें पता चलता है कि अपने अनजानमें ही तुम स्वतःचालित रूपमें किस प्रकारकी दासताके वशीभूत हो गये हो। तुम्हारे अंदर सहज-स्वाभाविक क्रियाका यंत्रवत् खेल होता रहता है जिसमें अवचेतन सहारा देता है और कार्य और कारणकी कड़ियां उत्पन्न करता है जो किसी नियमित क्रममें परस्पर आबद्ध होती हैं और तुम उसकी प्रक्रियाको जरा भी नहीं देख पाते।

यदि तुम सच्चा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो पहला अनिवार्य डग यह है कि तुम इन सब चीजोंकी सार्थकतामें विश्वास न करो, क्योंकि इन जानकारियोंपर तुम्हें लगभग पूर्ण विश्वास होता है और ये बहुत ही युक्तिसंगत ढंगसे तुम्हें स्पष्ट प्रतीत होती हैं और इसी कारण स्वयं ये जानकारियां ही ठीक तुम्हें तादात्म्यद्वारा प्राप्त ज्ञानतक पहुंचनेसे रोकनेवाली सीमाएं बन जाती हैं।

सच्चा एकान्त

यह निश्चित है कि आत्माकी स्वतंत्रता पानेके लिये अकेले खाना, अकेले सोना, अकेले घूमना और जंगलमें बिल्कुल अकेले रहना बिलकुल ही पर्याप्त नहीं है।

देखा गया है कि जो लोग वनमें अकेले रहते हैं उनमेंसे अधिकांश लोग अपने अगल-वगलके सारे पशुओं और पेड़-पौधोंके मित्र वन जाते हैं। सच पूछो तो एकमात्र एकांतमें रहनेसे ही तुम्हें आंतरिक ध्यानमें और परम सत्यके संस्पर्शमें निवास करनेकी शक्ति नहीं मिल जाती। संभवतः परिस्थितिके वश जब तुम्हें कुछ भी करनेको नहीं रहता, तब ऐसा करना अधिक आसान हो जाता है, किंतु मुझे इसपर विश्वास नहीं। तुम सदा ही कोई-न-कोई धंधा ढूंढ़ सकते हो और जीवनके मेरे जो अनुभव रहे हैं उनसे मुझे ऐसा लगता है कि यदि तुम कठिनाइयोंके बीच अपनी प्रकृतिपर अधिकार कर सको, भगवान्की कृपाने तुम्हें जैसा परिपार्श्व प्रदान किया है उसके बीच रहते हुए यदि तुम आंतरिक रूपमें शाश्वत उपस्थितिके साथ एकाकी रहनेका प्रयत्न करो तो तुम्हें जो सिद्धि मिलेगी वह अनंतगुनी अधिक सच्ची, अधिक गहरी और अधिक स्थायी होगी।

कठिनाइयोंको जीतनेके लिये उनसे दूर भाग जाना कोई समाधान नहीं है। यह आकर्षक वहुत है, आध्यात्मिक जीवनकी खोज करनेवालोंमें कोई चीज ऐसी होती है जो कहती है : "ओह! किसी वृक्षके नीचे, बिलकुल अकेले, वैठ जाना, ध्यानमग्न वने रहना, बोलने और कार्य करनेके किसी प्रलोभनमें अब न पड़ना, यह कितना सुंदर होगा।" इसका कारण यह होता है कि इस भावनामें एक वहुत सबल रचना होती है, किंतु होती है वह बड़ी ही भ्रमात्मक। सर्वोत्तम ध्यान वह होता है जो अकस्मात् तुम्हें प्राप्त होता है, क्योंकि वह तुम्हें एक अनिवार्य आवश्यकताकी नाईं धर दवाता है। तव तुम एकाग्र होने,

ध्यान करने, बाह्य रूपसे बहुत आगे दृष्टि निक्षेप करनेके सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते और यह आवश्यक नहीं कि इस प्रकारकी ध्यानकी आवश्यकता तुम्हें वनके एकांतमें ही धर दबाये, ऐसा तो तब हुआ करता है जब अंतरमें कोई चीज तैयार हो जाती है, जब उसका मुहूर्त्त आ जाता है, जब उसकी सच्ची आवश्यकता हो जाती है, जब भगवत्कृपा तुम्हारे साथ होती है।

मैं जैसा देखती हूं, मानवजातिने प्रगतिकी है और सच्ची विजय जीवनमें ही प्राप्त करनी है। तुम्हें यह जानना चाहिये कि सब परिस्थितियोंके बीच उन शाश्वत और अनंतके साथ किस प्रकार एकाकी रहा जाता है। तुम्हें यह जानना चाहिये कि सब धंधोंके बीच उन परात्पर सखाके साथ रहते हुए किस प्रकार मुक्त रहा जाता है। बस, यही है सच्ची विजय।

सच्चा आनन्द कैसे प्राप्त किया जाय?

सर्वप्रथम, ध्यानपूर्वक निरीक्षण करके यह बोध प्राप्त कर लेना चाहिये कि कामनाएं और उनकी तुष्टि केवल एक अस्पष्ट सुख प्रदान करती हैं। यह सुख अनिश्चित, मिश्रित, क्षणभंगुर और बिल्कुल ही असंतोषकारक होता है। साधारणतः यह बोध आरंभस्थल होता है।

तब तुम्हें यह जानना-पहचानना होता है कि कामना क्या चीज है और उसकी संतुष्टिके लिये कुछ भी करनेसे केवल इनकार ही नहीं करना होगा, बल्कि कामनाको ही सीधे निकाल बाहर करना होगा। कुछ कम या अधिक समयके बाद, कभी-कभी बहुत थोड़े समयके ही बाद, तुम देखोगे, जैसा कि बुद्धने देखा था, कि किसी

कामनाकी पूर्त्तिमें जो क्षणिक और मिश्रित तुच्छ सुख तुम्हें मिल सकता है उससे कहीं असीम रूपमें वड़ा आनंद तुम कामनाको जीत-कर और उसे अतिक्रम करके अनुभव करते हो। और यह है द्वितीय पग।

स्वभावतः ही इस प्रकारके सतत अनुशासनका परिणाम यह होगा कि कामनाएं तुमसे कुछ दूर अलग रहेंगी और अव तुम्हें परेशान नहीं करेंगी। तव तुम अपनी सत्तामें कुछ अधिक गहराईतक प्रवेश करनेके लिये और आनंदके 'दाता' दिव्य तत्त्व, भागवत कृपाके प्रति अभीप्सा रखते हुए अपने-आपको उन्मीलित करनेके लिये स्वतंत्र रहोगे। यह चेष्टा यदि सच्चे आत्मार्पणके साथ की जाय, यानी यदि तुम अपने-आपको दे दो, यदि वदलेमें कुछ भी पानेकी आशासे रहित होकर अपने-आपको अर्पित कर दो तो तुम एक ऐसी ऊष्मा अनुभव करोगे जो मधुर, घनिष्ठ और आभाप्रद होती है, जो तुम्हारे हृदयमें भर जाती है और सच्चे आनंदकी अग्रगामी होती है।

उसके वाद मार्ग आसान हो जाता है।

किंतु यहां यह कह दूं कि तुम यदि आनंदकी प्राप्तिको लक्ष्य वनाकर यह अभ्यास करो तो इससे आनंदके आनेमें देर होगी; क्यों-कि इस अवस्थामें तुम अपने प्रयासमें एक अहमात्मक तत्त्वको समा-विष्ट कर देते हो। तव यह कोई आत्मार्पण नहीं रह जाता, वल्कि मांग वन जाता है। परंतु फिर भी आनंद तो आयेगा, स्वभावतः ही आयेगा, किंतु आयेगा वहुत अधिक समय और प्रयत्नके वाद; उस समय इससे कहीं कम समय और प्रयत्नकी आवश्यकता होती है जव कि किसी भी चीजकी मांग नहीं की जाती, किसी भी चीजकी प्रतीक्षा नहीं की जाती, किसी भी चीजकी आशा नहीं की जाती, जव किसी भी प्रकारका मोल-तोल न कर महज विशुद्ध आत्मार्पण किया जाता है; जव यह एक सहज-स्वाभाविक अभीप्सा और आव-श्यकता होती है। वस, यही वात है।

योगमें हमारे परीक्षक

पूर्ण योगमें परीक्षाओंका एक तांता लगा रहता है जो कभी टूटता नहीं। विना किसी पूर्व-सूचनाके इन परीक्षाओंको उत्तीर्ण करना पड़ता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि तुम सदा सतर्क और सावधान बने रहो।

ये परीक्षाएं लेनेवाले परीक्षक तीन तरहके होते हैं। देखनेमें इनका आपसमें कोई संबंध नहीं मालूम होता, उनकी विधियां इतनी भिन्न होती हैं, कभी-कभी वे एक दूसरीके इतनी विपरीत भी होती हैं कि वे एक ही लक्ष्यकी ओर जाती हुई भी नहीं मालूम पड़तीं। किंतु फिर भी वे एक-दूसरीकी पूरक होती हैं; वे एक ही लक्ष्यके लिये एकसाथ कार्य करती हैं और परिपूर्ण परिणाम ले आनेके लिये अनिवार्य होती हैं।

ये तीन प्रकारकी परीक्षाएं हैं: पहली वे जिन्हें प्रकृतिकी शक्तियां करती हैं; दूसरी जिन्हें आध्यात्मिक और दिव्य शक्तियां करती हैं और तीसरी वे, जिन्हें विरोधी शक्तियां करती हैं। इनमेंसे अंतिम श्रेणीकी परीक्षाएं बहुत छल-छद्मसे भरी होती हैं। यदि कोई अचानक या अप्रस्तुत स्थितिमें इन परीक्षाओंकी चपेटमें आनेसे बचना चाहे तो उसे सदैव सतर्कता और सच्चाई और विनम्रताकी स्थितिमें बने रहना चाहिये।

साधारण-से-साधारण परिस्थितियां, दैनिक जीवनकी घटनाएं, अति महत्वहीन दीखनेवाली चीजें, लोग-बाग, ये सब परीक्षकोंकी इन तीन श्रेणियोंमेंसे किसी-न-किसीमें आते हैं। परीक्षाओंके इस विशाल और जटिल संगठनमें, उन घटनाओंमें उत्तीर्ण होना सबसे अधिक आसान होता है जिन्हें सामान्यतया जीवनमें अति महत्त्वपूर्ण समझा जाता है, क्योंकि इनके लिये तुम सावधानी और तैयारीकी हालतमें पाये जाते हो। रास्तेके छोटे पत्थरोंपर तुम्हारा ध्यान नहीं जाता

और इसलिये तुम उनपर आसानीसे ठोकरें खाते हो।

सहनशीलता और नमनीयता, प्रसन्नता और निर्भयता ही वे गुण हैं जिनकी भौतिक प्रकृतिकी परीक्षाओंके समय बहुत अधिक आवश्यकता होती है।

अभीप्सा, विश्वास, आदर्शवादिता, उत्साह और आत्मदानमें उदारताकी आवश्यकता आध्यात्मिक परीक्षाओंके समय होती है।

सतर्कता, सच्चाई और विनम्रता विरोधी शक्तियोंकी परीक्षाओंके समय आवश्यक होती हैं।

यह कभी मत सोचो कि एक ओर तो वे लोग हैं जो परीक्षामें बैठते हैं और दूसरी ओर वे हैं जो परीक्षाएं लेते हैं। परिस्थिति और कालके अनुसार, व्यक्ति एक समय ही परीक्षार्थी भी होता है और परीक्षक भी तथा ऐसा भी हो सकता है कि वह एक संग अपने-आपमें परीक्षार्थी और परीक्षक दोनों ही हो।

जहांतक इससे लाभ उठानेकी बात है, यह निर्भर करती है अपनी अभीप्साकी तीव्रता और अपनी चेतनाकी जागृतिकी मात्रा और प्रकारपर।

अंतमें, एक आखिरी सलाह है: कभी परीक्षक होनेका दिखावा मत करो। क्योंकि, जब कि यह सदा याद रखना अच्छा होता है कि तुम शायद किसी बहुत महत्त्वपूर्ण परीक्षाके बीचसे गुजर रहे हो, इसके विपरीत, यह सोचना अत्यंत खतरनाक होता है कि दूसरोंकी परीक्षा लेनेका भार तुम्हारे ऊपर है। यह चीज बहुत ही हास्यास्पद और हानिकारक मिथ्याभिमानके लिये दरवाजा खोल देती है। इन चीजोंका निर्णय करती है परमा प्रज्ञा-शक्ति, न कि कोई अज्ञानी मानवी इच्छा।

*　　　*

हर बार जब तुम्हें कोई प्रगति करनी होती है, तुम्हें किसी-न-किसी परीक्षामें उत्तीर्ण होना होता है।

अदिति पुस्तक-माला

*हम प्रत्येक तीसरे महीने 'अदिति पुस्तक-माला' के नामसे एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित करते हैं।

*प्रत्येक पुस्तक श्रीमां-श्रीअरविंदके मूल लेखोंमेंसे संकलित की जाती है।

*प्रत्येक पुस्तक जीवन और साधनासे संबंधित किसी एक विषयको ध्यानमें रखकर संकलित की जाती है।

*प्रत्येक पुस्तकका संकलन इस ढंगसे करनेका प्रयास किया जाता है कि पाठकोंको श्रीमां-श्रीअरविंदकी शिक्षा हृदयंगम करनेमें सहायता मिले।

*प्रत्येक पुस्तककी भाषा सरल और सुबोध रखनेकी कोशिश की जाती है।

*प्रत्येक पुस्तक शुद्ध और सुन्दर रूपमें छापनेकी चेष्टा की जाती है।

*प्रत्येक पुस्तक लगभग ८० से १०० पृष्ठोंतककी होती है और प्रत्येकका मूल्य---लागतके हिसाबसे---ढाईसे साढ़े तीन रुपयेतक रखा जाता है।

*स्थायी ग्राहकोंको सालकी चारों पुस्तकें केवल ८) आठ रुपया वार्षिक चंदेमें दी जाती हैं।

पत्रव्यवहारका पता :

अदिति कार्यालय

श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरी-२

आत्मज्ञान, आत्म-प्रभुत्व और आत्म-संयमकी जितनी भी विधियां हैं सब अच्छी हैं। तुम्हें उस साधनको चुन लेना है जो कि तुम्हें सहज रूपसे मिलता हो, और तुम्हारे स्वभावके अधिक-से-अधिक अनुकूल पड़ता हो। जब साधनका चुनाव हो गया तो तुम्हें अपनी सचेतन इच्छाशक्तिका उपयोग कर उस साधनका प्रयोग, चाहे कोई विघ्न आये, कोई भी कठिनाई आये, अडिग रहनेवाली लगनके साथ करना चाहिये। यह कार्य लंबा और बड़ा सूक्ष्म भी है। यह काम आरंभ करना होगा सच्चाईके साथ और उसे चालू रखना होगा सदा बढ़ती हुई, सदा अधिक सतर्क और अधिक पूर्ण होती हुई सच्चाईके साथ।

आसान रास्ते साधारणतः कहीं नहीं पहुंचाते।

— श्रीमां

अदिति पुस्तक-माला — पुष्प २०

मूल्य रु. २.५०